ज्ञानावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

मोहनीय कर्म

कर्मग्रंथ (भाग-2)

(दूसरा-तीसरा-कर्मग्रंथ)

विवेचनकार-संपादक : पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आयुष्य कर्म

अंतराय कर्म

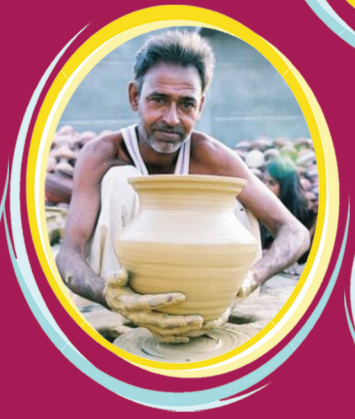

गोत्र कर्म

नाम कर्म

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित–

कर्मग्रंथ भाग-2

दूसरा-तीसरा-कर्मग्रंथ

हिन्दी संपादक

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक

स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. के

शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर**

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न

प्रभावक प्रवचनकार एवं हिन्दी साहित्यकार, मरुधररत्न

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

196

प्रकाशक

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स,

507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार,

सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E),

मुंबई-400 002. Cell 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : द्वितीय • लागत मूल्य : 110/- रुपये • प्रतियां-1000
विमोचन स्थल :श्री जगवल्लभ पार्श्वनाथ जैन श्वे. मूर्ति. आराधक संघ
विजयपुर (बिजापूर) (कर्णाटक) • **दि. 9-11-2021**

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता

शुल्क - 3000/- रु.

आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्त्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हो तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य *आचार्यदेव श्रीमद् विजय* रत्नसेनसूरीश्वरजी *म. सा.* द्वारा आलेखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. **चंदन एजेंसी M. 9820303451**
   607, चीरा बाजार, ग्राउंड फ्लोर, मुंबई-400 002.
   Tel. O. 2205 6821
2. **चेतन हसमुखलालजी मेहता**
   भायंदर. **M. 9867058940**
3. **श्री आदिनाथ जैन श्वेतांबर संघ**
   श्री सुरेशगुरुजी M. 98441 04021
   नं.4, Old No. 38, फ्लोर,रंगराव रोड, शंकरपुरम्, बैंगलुर-560 004. (कर्नाटक)
   राजेश मो. 9241672979

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.ओस.ओस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

विपूल हिन्दी साहित्य सर्जक, **मरुधर रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.** द्वारा आलेखित-संपादित **'कर्मग्रंथ-भाग-2' (दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ)** के हिन्दी विवेचन की दूसरी आवृत्ति प्रकाशित करते हूए हमें ही हर्ष हो रहा है ।

श्वे. मूर्तिपूजक जैन संघ में वर्तमान काल में साधु-साध्वी एवं मुमुक्षुजन के प्राथमिक पाठ्यक्रम के रुप में पंच प्रतिक्रमण, नव स्मरण, चार प्रकरण, तीन भाष्य और छह कर्मग्रंथों का अभ्यास किया जाता है ।

चार प्रकरण आदि सूत्रों के कंठस्थ करने के बाद उसका अर्थ बोध भी जरुरी है ।

गुजराती भाषा में इन सभी पर विस्तृत-व संक्षिप्त विवेचन भी उपलब्ध है, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचनात्मक साहित्य की बहुत बडी कमी है । इस कमी की पूर्ति के लिए **मरुभूमि के रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरिजी म.सा.** अपने संयम जीवन के प्रारंभिकाल से ही प्रयत्नशील है ।

उन्होंने अत्यंत ही सरल-सुबोध और रोचक शैली में पंच प्रतिक्रमण, जीव-विचार, नव तत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी, तीन भाष्य तथा छह कर्म–ग्रंथो आदि पर हिन्दी भाषा में विवेचन किया है ।

जैन धर्म के प्रारंभिक पाठ्यक्रम के रुप में प्रकाशित साहित्य दक्षिण भारत में खूब व उपकारक बना है ।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास हैं कि यह प्रकाशन पाठकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगा !

-: निवेदक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल

विवेचनकार और संपादक की कलम से

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अनंत करुणा के स्वामी, जगत्-उद्धारक, तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान अर्थात् आत्म प्रत्यक्ष पूर्ण ज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर आत्म-हितैषी आत्माओं के कल्याण के लिए उसका यथार्थ प्ररुपण भी करते हैं ।

जगत् के जीवों को भ्रमित करानेवाले मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय हो जाने के कारण वे तारक परमात्मा वीतराग कहलाते है, अतः उन्हें असत्य बोलने का कोई प्रयोजन नहीं रहता हैं ।

सामान्यतया व्यक्ति दो कारणों से झूठ बोलता हैं–

1) अज्ञानता के कारण 2) मोह के कारण ।

जिस वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं है और उस वस्तु के संदर्भ में कोई अपना अभिप्राय देगा तो उसमें असत्य कथन की पूरी पूरी संभावना रहता है ।

किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान है, परंतु मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा मोह, लोभ या लालच हो तो व्यक्ति झूठ बोल सकता है ।

तारक परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के बाद जब तक वीतराग और सर्वज्ञ नहीं बनते है, तब तक धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, अतः वीतराग-सर्वज्ञ को कहीं असत्य भाषण का नाम मात्र का भी प्रयोजन नहीं होने से उनके द्वारा निरुपित पदार्थों में शंका को स्थान नहीं रहता है ।

परमात्मा ने अपने ज्ञान के बल से देखकर आत्मा के

संदर्भ में सुंदर निरुपण किया है । यद्यपि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है, फिर भी उसके यथार्थ स्वरुप को जानकर आत्मा के षट्स्थान बताए है–

1) आत्मा है ।

2) आत्मा परिणामी नित्य है अर्थात् आत्मा अन्य अन्य पर्यायों को ग्रहण करते हुए भी मूल द्रव्य से नित्य है ।

3) अरुपी ऐसी **आत्मा भी कर्म की कर्ता है ।** ज्ञानवरणीय आदि शुभ अशुभ कर्मों को बांधने का काम भी आत्मा स्वयं ही करती है ।

4) आत्मा कर्म फल की भोक्ता हैं अर्थात् आत्मा ने अपने शुभ-अशुभ अध्यवसायों द्वारा जिन कर्मों का बंध किया है उन कर्मों का फल भी वह स्वयं ही भोगती है ।

5) आत्मा का मोक्ष है– यद्यपि प्रवाह की अपेक्षा से आत्मा अनादिकाल से कर्म से बद्ध है, फिर भी वह अपने प्रयत्न द्वारा कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त भी हो सकती है ।

6) मोक्ष का उपाय है– कर्म के जटिल बंधनों से मुक्त होने के लिए जगत् में सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रुप मोक्ष मार्ग भी है, जिस मार्ग का अनुसरण कर आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत-अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया है ।

'आत्मा कर्म की कर्ता है और कर्म फल की भोक्ता हैं' आत्मा के इस स्वरूप के संदर्भ में ही प्रभु ने संपूर्ण **'कर्म विज्ञान'** का निरुपण किया है ।

'आत्मा स्वयं ही कर्म बांधती है और उसका फल भोगती हैं' इस बात को अकाट्य तर्कों द्वारा सिद्ध किया गया हैं, इस सत्य को समझ लेने के बाद **'जगत् कर्ता'** ईश्वर है और ईश्वर ही जीवात्मा को स्वर्ग, नरक, सुख-दु:ख आदि देता है–'की मिथ्या मान्यता में से व्यक्ति मुक्त हो जाता है ।'

भगवान महावीर के द्वितीय शिष्य अग्निभूति के अन्तर्मन में दीक्षा के पूर्व कर्म हैं या नहीं ? के संदर्भ में शंकाएं थी-परंतु महावीर प्रभु ने उसका युक्तिपूर्वक समाधान कर जगत् के सामने **'कर्म विज्ञान'** को प्रकाशित किया था । उसके बाद वायुभूति आदि के दिल में भी **'जगत् की समुचित व्यवस्था कैसे चल रही है ?'** के संदर्भ में जो भिन्न भिन्न शंकाएं थी-उसका बहुत ही सुंदर समाधान प्रभुवीर ने किया था– उनका यह वार्तालाप आज भी **'गणधरवाद'** के रुप में खूब प्रसिद्ध है ।

यह **'गणधरवाद'** **'विशेषावश्यक भाष्य'** ग्रंथ में प्राकृत-संस्कृत भाषा में आज भी विद्यमान हैं ।

जिनागमों के आधार पर ही भूतकाल में अनेक आचार्य भगवंतों ने विपूल प्रमाण में **'कर्म साहित्य'** का सर्जन किया है ।

यद्यपि अग्नि-जल-भूकंप आदि अनेक प्राकृतिक आपदाओं के कारण काफी साहित्य नष्ट हो चूका हैं, फिर भी जो बचा है वह भी खूब उपयोगी व महत्त्वपूर्ण हैं ।

वर्तमान में उपलब्ध कर्म साहित्य में प्राकृत भाषा में कम्मपयडी और पंचसंग्रह मुख्य है ।

कम्मपयडी में 475 गाथाएं हैं, जो दूसरे पूर्व में से संग्रहित हैं तो पंच संग्रह में 1000 गाथाएं है, जिसमें योग, उपयोग, कर्मबंध, बंध हेतु, उदय, उदिरणा, सत्ता, बंध आदि आठ करण आदि का सुंदर विवेचन है ।

वर्तमान में प्राचीन और अर्वाचीन छह कर्मग्रंथ मिलते है प्राचीन छह कर्मग्रंथो के आधार पर ही **देवेन्द्रसूरिजी म.** ने पांच कर्मग्रंथों की रचना की है इनके नाम कमशः कर्म विपाक, कर्मस्तव, बंध-स्वामित्व, षडशीति और शतक हैं । पहले तीन ग्रंथों का नाम अपने विषय के अनुरुप और चौथे-पांचवे कर्मग्रंथ का नाम उनमें निर्दिष्ट गाथा की संख्या के अनुसार है ।

दूसरा कर्मग्रंथः– पहले कर्मग्रंथ में कर्मों के मुख्य भेद उत्तर प्रकृत्तियों की संख्या, उन कर्मों के बंध के हेतु और उन कर्मों के फल का सुंदर निर्देश किया है । प्रस्तुत दूसरे कर्मग्रंथ में गुण स्थानकों के अनुसार कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता का निर्देश किया है ।

बंध अधिकार में प्रत्येक गुण स्थानक में रहे जीवों की बंध योग्यता बताई हैं, उसी प्रकार उदय, उदीरणा और सत्ता के अधिकार में उन उन गुणस्थानकों में होने वाले कर्म के उदय आदि को बतलाया गया है ।

प्रचीन कर्म ग्रंथ में 55 गाथाएं हैं, जबकि इसमें 34 ही है, परंतु संक्षेप में उन सब विषयों का इसमें संग्रह कर लिया गया है ।

तीसरा कर्मग्रंथः– तीसरे कर्मग्रंथ में 14 मार्गणाओं के गति आदि उत्तर भेद के आधार पर गुणस्थानकों को लेकर बंध-स्वामित्व का कथन किया गया हैं । किस किस मार्गणा में कितने गुणस्थानक संभव है, उन मार्गणावर्ती जीवों में सामान्य से तथा गुणस्थानकों के विभागानुसार कर्म बंध की योग्यताओं का वर्णन किया है ।

इन कर्मग्रंथों पर उपलब्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर आज तक गुजराती में महेसाणा पाठशाला की ओर से तथा अन्य भी विद्वान् पंडितों के विवेचन प्रकाशित हुए है । हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचन नहींवत् उपलब्ध है ।

वर्षों पूर्व हिन्दी भाषा में स्थानकवासी संप्रदाय के मुनिश्री मिश्रीमलजी द्वारा विवेचित दूसरे-तीसरे कर्मग्रंथ को भी ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत विवेचन तैयार किया है । छद्मस्थतावश जाने-अनजाने में कहीं स्खल्लनाएं रह गई हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् ।

श्री सीमंधर शांतिसूरि जैन ट्रस्ट,
वासावी टेंपल रोड, सज्जनराव सर्कल,
वी.वी. पुरम्, बेंगलोर-560 004.
दि. 1-8-2017

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी पादपद्मरेणु
आचार्य विजय रत्नसेनसूरि
(प्रथम आवृत्ति में से)

हिन्दी साहित्यकार मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू. आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारित के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पू. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	Chaitya Vandan Sootra	2052	अंग्रेजी हिन्दी में मूल सूत्र	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. के पत्रों का हिन्दी अनुवाद	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावा
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन कीर्ति स्थंभ	घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर-1	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	कर्मग्रंथ भाग-2	2073	दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	कर्मग्रंथ भाग-3	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	7 जाहिर प्रवचनों का सुंदर संकलन	मैसूर
204.	पांचवा कर्मग्रंथ	2074	5 वें कर्मग्रंथ का हिन्दी विवेचन	मैसूर
205.	छठा कर्मग्रंथ	2074	छठे कर्मग्रंथ का हिन्दी विवेचन	बेंगलोर
206.	Celibacy	2075	'ब्रह्मचर्य' का अंग्रेजी अनुवाद	सेलम
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2075	पू.पं.भद्रंकरविजयजी के प्रवचनों का सार	ईरोड
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	श्रमणक्रिया के सूत्रों का हिन्दी विवेचन	कोयमत्तूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	सिंदुर प्रकर ग्रंथ आधारित 21 गुणों का विवेचन	कोयमत्तूर
210.	शंका–समाधान भाग-4	2076.	प्रश्नों के सुंदर जवाब	आराधना भवन-चैन्नई
211.	व्यसनमुक्ति	2076	सात व्यसनों पर सुंदर विवेचन	कोंडितोप (चैन्नई)
212.	गणधर संवाद	2076	गयारह गणधरों व प्रभुवीर का संवाद	कोंडितोप (चैन्नई)
213.	New Message for New Day	2076	365 दिनों के अंग्रेजी सुवाक्य	कोंडितोप (चैन्नई)
214.	चिंतन का अमृतकुंभ	2076	पूज्य आचार्य भगवंत के प्रवचन मोती	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव–प्रतिवासुदेव–बलदेव	2077	7 बलदेव, वासुदेव आदि का परिचय	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार भाग-1	2077	नवकार के अद्‌भूत रहस्य	बल्लारी
217.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार भाग-2	2077	नवकार ध्यान साधना	बल्लारी
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पू.पंन्यासजी म. के स्वर्गस्थ शिष्यादि का परिचय	बल्लारी
219.	सुखी जीवन के Milestone	2077	सुवाक्यों का अद्‌भूत खजाना	विजयापूर (कर्णाटक)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर..(1 से 9)	2077	महावीर प्रभु की 9 पट्टधर परंपरा का वर्णन	विजयापूर
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर..(10 से 40)	2077	महावीर प्रभु के 10 से 40 पट्टधर	विजयापूर
222.	महावीर प्रभु के पट्टधर (41 से 57)	2076	महावीर प्रभु के 41 से 57 पट्टधर	बीजापूर (कर्णाटक)

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृ. सं
1.	**दूसरा कर्मग्रंथ**	**1**
2	**चौदह-गुणस्थानक**	**4**
	चौदह गुणस्थानक	5
	उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप	8
	उपशम श्रेणी का स्वरूप	22
	भिन्न-भिन्न मत	23
	गुणस्थानकों में ऊर्ध्व आरोहण	24
	क्षपक श्रेणी का स्वरूप	25
	विसंयोजना और क्षय में अंतर	25
	उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी में अंतर	26
	केवली समुद्घात	27
	गुणस्थानकों का जघन्य-उत्कृष्ट काल	30
	भवचक्र में गुणस्थानकों की प्राप्ति	30
	बंध-विधि	31
3	**बंध-विधान**	**31**
	मिश्र गुणस्थानक	34
	मिश्र गुणस्थानक में कर्म बंध	35
	77 प्रकृतियाँ	37
	10 का बंध विच्छेद	37
	पाँचवें देशविरति गुणस्थानक में 67 का बंध	38
	छठे गुणस्थानक में 63 का बंध	39
	छठे प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में 6 या 7 का बंधविच्छेद	39
4	**अप्रमत्त में बंध**	**40**
	7वें अप्रमत्त गुणस्थानक में 58 या 59 का बंध	40
	59 का बंध	41
	अपूर्वकरण- आठवें गुणस्थानक के 7 भाग हैं ।	42
5	**नौवें गुणस्थानक में बंध और बंध विच्छेद**	**43**
	अयोगी- अबंधक	47
6	**उदय विधि**	**47**
	मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 का उदय	48
	चौथे अविरत गुणस्थानक में 104 का उदय	53
	चौथे गुणस्थानक के अंत में 17 का उदय विच्छेद	53

	देशविरति में 87 प्रकृति	54
	देशविरति के अंत में 8 का उदय विच्छेद	54
	प्रमत्त गुणस्थानक में 81 का उदय	55
	प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में 5 का उदय विच्छेद	56
	76 प्रकृतियाँ	56
	नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 का उदय	58
	सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 का उदय	59
	11वें उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 का उदय	59
	उदय यंत्र	64
7	**उदीरणा**	**65**
	उदीरणा यंत्र	67
8	**सत्ता-विधान**	**68**
9	**अयोगी गुणस्थानक में सत्ता**	**78**
	1. परिशिष्ट	80
	2. उदय यंत्र	82
	3. उदीरणा यंत्र	83
	4. सत्ता यंत्र	84
	गुणस्थानक-बंधादि विषयक यंत्र	86
	नाम कर्मनी 93-103	89
10	**तृतीय कर्मग्रंथ**	**94**
11	**14 मार्गणाएँ**	**95**
	मार्गणाओं के उत्तर भेद	**97**
12	**5 इन्द्रिय व 6 काय मार्गणा**	**113**
13	**योग मार्गणा में बंध-स्वामित्व**	**116**
14	**कार्मण काय योग में बंध स्वामित्व**	**119**
15	**कषाय-मार्गणा**	**121**
	संयम मार्गणा	**123**
	ज्ञान मार्गणा	**123**
	दर्शन मार्गणा	**124**
16	**यथाख्यात चारित्र**	**124**
	संयम मार्गणा	**125**
	दर्शन-ज्ञान मार्गणा	**125**
	लेश्या मार्गणा	**130**
मार्गणाओं में उदय-उदीरणा-सत्ता-स्वामित्व		**135**

1

दूसरा कर्मग्रंथ

तह थुणिमो वीरजिणं, जह गुणठाणेसु सयल कम्माइं ।
बन्धुदओदीरणया सत्ता पत्ताणि खवियाणि ।।1।।

शब्दार्थ :-

तह=उस प्रकार	**बन्धुदओ=**बंध-उदय
थुणिमो=स्तुति करते हैं	**उदीरणया=**उदीरणा
वीरजिणं=वीर प्रभु की	**सत्ता=**सत्ता
जह=जिस प्रकार	**पत्ताणि=**प्राप्त हुए
गुणठाणेसु=गुणस्थानकों में	**खवियाणि=**क्षय किए हैं
सयल कम्माइं=सभी कर्म	

भावार्थ :- जिस प्रकार वीर प्रभु ने गुणस्थानकों में बंध उदय उदीरणा और सत्ता को प्राप्त सभी कर्मों को नष्ट किया है, उस प्रकार से हम वीर प्रभु की स्तुति करते हैं ।

विवेचन :- यह संसार अनादिकाल से है । इस संसार में आत्मा का अस्तित्व भी अनादिकाल से है । इस अनादि संसार में आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है ।

आत्मा और कर्म के इस संयोग को चर्म चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष देख नहीं सकते हैं ।

जब आत्मा और कर्म के संयोग को हम देख ही नहीं सकते हैं तो उस कर्म के संयोग को दूर हटाने का पुरुषार्थ तो कैसे कर सकते हैं ?

केवलज्ञान के बिना आत्मा और कर्म के इस संयोग को प्रत्यक्ष देखना संभव नहीं है । तारक महावीर प्रभु ने अपने केवलज्ञान के बल से आत्मा और कर्म के संयोग को प्रत्यक्ष देखा और उस संयोग को दूर करने का उपाय भी देखा ।

प्रभु ने आत्मा और कर्म के संयोग को मात्र देखा ही नही, परंतु करुणानिधान उन प्रभु ने कर्म का वह स्वरूप जगत् के जीवों को भी बतलाया ।

कर्म के स्वरूप को जानने के बाद उस कर्म से किस प्रकार मुक्ति हो, वह उपाय भी प्रभु ने बतलाया ।

परमोपकारी **पू. देवेन्द्रसूरिजी म.** ने प्रभु के बताए हुए कर्म के स्वरूप को प्रथम कर्मग्रंथ **'कर्मविपाक'** के रूप में गूँथा तो उसके बाद उन कर्मों का किस प्रकार क्षय किया जा सके, वैसा उपाय भी उन्होंने इस दूसरे कर्मग्रंथ अर्थात् **'कर्म स्तव'** के माध्यम से बतला दिया है ।

प्रभु में रहे असाधारण गुणों के कथन को **स्तुति** कहते हैं ।

प्रभु की स्तुति चार प्रकार से हो सकती है-

(1) प्रभु में रहे अजोड़ क्षमा आदि गुणों का कथन करना ।

(2) प्रभु के अलौकिक चरित्र का वर्णन करना ।

(3) प्रभु के द्वारा बताए हुए अलौकिक तत्त्वों का प्रकाशन करना ।

(4) प्रभु के बताए हुए सिद्धान्तों को- साधना मार्ग को, स्तुति के रूप में गूँथना ।

प्रस्तुत **'कर्म स्तव'** नाम के ग्रंथ में ग्रंथकार ने प्रभु के उस साधना मार्ग का वर्णन किया है, जिस साधना मार्ग से आत्मा पर लगे हुए समस्त कर्मों का उन्होंने क्षय किया था ।

1 मंगल :- ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल किया जाता है । प्रस्तुत ग्रंथ में थुणिमो वीर 'अर्थात् वीर भगवान की हम स्तुति करते हैं' कहकर मंगल किया गया है । मंगल से विघ्नों का उपशमन होता है ।

2 अभिधेय :- प्रस्तुत ग्रंथ में गुणस्थानकों में कर्म के बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता का स्वरूप समझाया गया है ।

3 प्रयोजन :- प्रस्तुत ग्रंथ का प्रयोजन पदार्थ का बोध है । गुणस्थानकों में कर्म के बंध आदि पदार्थों का बोध यह प्रस्तुत ग्रंथ का अनंतर प्रयोजन है, और परंपरा से ग्रंथ का प्रयोजन सकल कर्म से मुक्ति अर्थात् मोक्ष पद की प्राप्ति करना है ।

4 सम्बन्ध :- जिस प्रकार घट शब्द और घट वस्तु के बीच वाच्य-वाचक संबंध है, उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ से गुणस्थानकों में कर्मबंध आदि पदार्थों का बोध होता है । अतः प्रस्तुत ग्रंथ और उससे वाच्य पदार्थों के बीच वाच्य वाचक भाव संबंध है ।

5 अधिकारी :- मुमुक्षु आत्मा ही इस ग्रंथ को पढ़ने का अधिकारी है ।

जब तक आत्मा संसार में परिभ्रमण करती रहती है, तब तक आत्मा नवीन कर्मों का बंध करती है । आत्मा का संसार-परिभ्रमण कर्म को ही आभारी

है । जिस कर्म का बंध होता है तो समय बीतने पर उस कर्म कर्म उदय भी अवश्य होता है । अतः बंध के बाद उदय को जानना भी जरूरी है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में कर्म के बंधादि का वर्णन है-

1) बंध :- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप हेतुओं को प्राप्तकर आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है । वे कर्म पुद्गल आत्मा के साथ क्षीर-नीर की भाँति एकमेक हो जाते हैं । आत्मा के साथ कर्मों के इस प्रकार जुड़ने की प्रक्रिया को बंध कहते हैं ।

2) उदय :- आत्मा के साथ बँधा हुआ कर्म, आबाधा काल व्यतीत होने पर अपना शुभ-अशुभ फल अवश्य प्रदान करता है । उदयावस्था में प्राप्तकर्म ही अपना फल प्रदान करता है ।

बँधा हुआ कर्म जब तक आत्मा को अपना शुभ-अशुभ फल प्रदान नहीं करता है, उस काल को आबाधा काल कहते हैं ।

आबाधा काल व्यतीत होने पर ही कोई भी कर्म अपना फल देने में समर्थ बनता है । जिस काल में आत्मा कर्म-फल का अनुभव करती है, उसे कर्म का उदय काल कहते हैं ।

3) उदीरणा :- उदय काल प्राप्त न होने पर भी प्रयत्न विशेष से कर्मों को उदय में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं, आबाधा काल व्यतीत होने पर जो कर्म बाद में उदय में आनेवाले हों, उन्हें प्रयत्न विशेष से उदयावलि में लाकर उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

4) सत्ता :- बँधे हुए कर्म जब तक आत्मा के साथ लगे रहते हैं, उसे सत्ता कहते हैं ।

सामान्यतया जिस कर्म का बंध हो, उसी की सत्ता मानी जाती है, परंतु मोहनीय कर्म की ही उत्तर प्रकृति रूप मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय ऐसी दो प्रकृतियाँ हैं, जिनका स्वतंत्र रूप से बंध नहीं होने पर भी उनकी सत्ता को स्वीकार किया गया है ।

बँधे हुए मिथ्यात्व मोहनीय कर्म में ही जब फल देने की शक्ति कम हो जाती है और उनके कर्माणु अर्द्ध रस वाले और नीरस प्रायः हो जाते हैं तभी वे कर्माणु मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय कहलाते है । मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय का बंध नहीं होने पर भी उनकी सत्ता होती है ।

बंध ,उदय ,उदीरणा और सत्ता में रहे कर्मों का प्रभु ने क्षण मात्र में ही क्षय नहीं कर दिया था, परंतु आत्मा के विकास की उन-उन भूमिकाओं को गुणस्थानकों को प्राप्तकर कर्मों का क्षय किया था ।

गुणस्थान :- यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से आत्मा के ज्ञानादि गुणों के विकास की असंख्य स्थितियाँ होने से गुणस्थानकों के प्रकार भी असंख्य हो जाते हैं, परंतु महापुरुषों ने मिथ्यात्व आदि कार्यों की अपेक्षा से उन सभी का 14 भागों में वर्गीकरण किया होने से आत्मा के विकास के 14 गुणस्थानक कहलाते हैं ।

2 चौदह-गुणस्थानक

मिच्छे सासण मीसे अविरयदेसे पमत्त अपमत्ते ।
निअट्टि अनिअट्टि सुहुमवसम खीण सजोगि अजोगि गुणा ।।2।।

शब्दार्थ :-

मिच्छे=मिथ्यात्व	**अनिअट्टि=**अनिवृत्ति
सासण=सास्वादन	**सुहुम=**सूक्ष्म
मीसे=मिश्र	**उवसम=**उपशम
अविरय=अविरत	**खीण=**क्षीण
देसे=देशविरति	**सजोगि=**सयोगी
पमत्त=प्रमत्त	**अजोगि=**अयोगी
अपमत्ते=अप्रमत्त	**गुणा=**गुणस्थानक
निअट्टि=निवृत्ति	

भावार्थ :- 1. मिथ्यादृष्टि 2. सास्वादन 3. मिश्र 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरति 6. प्रमत्तसंयत 7. अप्रमत्तसंयत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्म संपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह 13. सयोगी केवली 14. अयोगी केवली ।

विवेचन :- आत्मा के ज्ञानादि गुणों का न्युनाधिक अंश में प्रकट होना, उसी को गुणस्थानक कहते हैं ।

यद्यपि गुणस्थानकों के विकास में मुख्य आधार मोहनीय कर्म के क्षय-उपशम और क्षयोपशम का है । इस कारण अभव्य आत्मा को साढ़े नौ पूर्व के

ज्ञान का क्षयोपशम हो जाने पर भी उस आत्मा का गुणस्थानक पहला ही होता है, जब कि माषतुष जैसे मुनि को ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम अल्प होने पर भी मोहनीय कर्म के क्षयोपशम-क्षय आदि के कारण वे चौथे आदि गुणस्थानकों को पारकर मोक्ष में चले गए थे ।

चौदह गुणस्थानक

1 मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक :- आत्मा के विकास की जो 14 सीढ़ियाँ हैं, उनमें पहली सीढ़ी का नाम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक है । मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय के कारण जिस जीव की दृष्टि मिथ्या अर्थात् विपरीत होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

धतूरे के बीज खाने पर सफेद वस्तु भी पीली दिखाई देती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के उदय से आत्मा कुदेव को देव, कुगुरु को गुरु और कुधर्म को धर्म समझती है ।

पित्तज्वर के रोगी को मीठी वस्तु भी कडवी लगती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व से ग्रस्त व्यक्ति को सच्चा धर्म भी अच्छा नहीं लगता है ।

इस गुणस्थानक के भी दो भेद हैं ।

(क.) गाढ़ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण एक पुद्गल परावर्त काल (अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी) से अधिक हो वह आत्मा अचरमावर्ती कहलाती है । उस अचरमावर्ती आत्मा का मिथ्यात्व अत्यंत ही गाढ़ होता है । उस आत्मा में मोक्ष और मोक्ष के साधनों के प्रति तीव्र द्वेष भाव रहा हुआ होता है ।

अभव्य आत्मा का मिथ्यात्व हमेशा गाढ़ होता है, क्योंकि वह आत्मा कभी भी चरमावर्त में प्रवेश नहीं करती है ।

आत्मा का विकास : व्यवहार राशि में आई आत्मा का ही विकास हो सकता है, अतः जो आत्मा भव्य होने पर भी सदा काल अव्यवहार राशि में ही रहनेवाली है अर्थात् जो जातिभव्य कहलाती हैं, वे भी अचरमावर्ती ही होती हैं ।

अव्यवहार राशि में भव्य, अभव्य और जातिभव्य तीनों प्रकार के जीव होते हैं, परंतु जाति भव्य जीव अव्यवहार राशि में से कभी बाहर नहीं निकलते हैं, अतः उनका मोक्ष कदापि संभव नहीं है ।

अचरमावर्त में रही आत्मा भवाभिनंदी होती है अर्थात् उसे संसार और संसार के सुख ही पसंद होते हैं ।

अचरमावर्त में रही आत्मा का कोई विकास नहीं होता है, उसके विकास के द्वार बंद ही होते हैं । वह आत्मा व्यवहार से चारित्र धर्म को स्वीकार भी करेगी तो भी उस आत्मा में मोक्ष के प्रति कोई अनुराग नहीं होगा ।

(ख.) मंद मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक :- अचरमावर्त में रही आत्मा गाढ़ मिथ्यादृष्टि होती है, परंतु समय बीतने पर जब आत्मा चरमावर्त में प्रवेश करती है तब उसका मिथ्यात्व मंद होने लगता है ।

चरमावर्त में प्रवेश के बाद ही आत्मा की विकास यात्रा का प्रारम्भ होता है । आत्मा में मोक्ष के प्रति अद्वेष आदि गुणों का प्रादुर्भाव होने लगता है ।

नदी गोल पाषाण न्याय से गाढ़ मिथ्यादृष्टि और मंद मिथ्यादृष्टि आत्माएँ अनंती बार ग्रंथिदेश को प्राप्त करती हैं, परंतु गाढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मा पुनः संक्लेशग्रस्त बनकर मोहनीय कर्म की स्थिति को बढ़ा लेती है, परंतु मंद मिथ्यादृष्टि जीव अपने अध्यवसायों की विशुद्धि द्वारा ग्रंथिदेश के निकट आने के बाद ग्रंथिभेद करने के लिए तैयार हो जाती है ।

जो आत्मा ग्रंथिदेश के निकट आने के बाद अवश्य ग्रंथिभेद करती है, उस आत्मा का वह यथाप्रवृत्तिकरण, चरम यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है और जो आत्माएँ ग्रंथिभेद नहीं कर पाती हैं, वे आत्माएँ चरम यथाप्रवृत्तिकरण नहीं कर पाती हैं ।

काल की अपेक्षा मिथ्यात्व के तीन भेद :-

1. अनादि-अनंत:- अभव्य जीव अनादि काल से मिथ्यादृष्टि है और अनंत काल तक मिथ्यादृष्टि रहेगा, अतः उसका मिथ्यात्व अनादि-अनंत है ।

2. अनादि सांत :- भव्य जीव का मिथ्यात्व अनादिकाल से होने पर भी सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद उस मिथ्यात्व का अंत आ जाता है, अतः भव्य जीव का मिथ्यात्व अनादि सांत है ।

3. सादि सांत :- सम्यक्त्व से पतित होकर जिस आत्मा ने मिथ्यात्व प्राप्त किया है, वह आत्मा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अर्ध पुद्गल परावर्तकाल के बाद अवश्य सम्यक्त्व प्राप्त करती है, अतः उसका मिथ्यात्व सादि-सांत है ।

मिथ्यात्व के अन्य 5 प्रकार :-

1. आभिग्रहिक मिथ्यात्व :- धर्मशास्त्र की परीक्षा किए बिना **''मैं जो धर्म करता हूँ वही सच्चा है, बाकी सब झूठे हैं''**- इस प्रकार धर्म के झूठे आग्रह को आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

2. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व :- धर्म शास्त्र की परीक्षा करने में असमर्थ मंद बुद्धिवाले जीवों की **'सभी धर्म समान हैं'**- ऐसी मान्यता को अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

3. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व :- स्वयं को मान्य सिद्धांत असत्य जानने पर भी जमालि आदि की तरह अहंकार आदि के कारण अपने मत की गहरी पकड़ को आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

4. सांशयिक मिथ्यात्व :- सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं या झूठे ?- इस प्रकार शंका करना, उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

5. अनाभोगिक मिथ्यात्व :- अज्ञानता आदि के कारण वीतराग देव आदि पर श्रद्धा के अभाव को अनाभोगिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

एकेन्द्रियादि जीवों का मिथ्यात्व अनाभोगिक होता है ।

(2.) सास्वादन गुणस्थानक :- किसी भी क्षेत्र में एक के बाद दो-तीन का स्थान प्रगति का ही होता है, परंतु गुणस्थानक के विषय में ऐसा नहीं है । दूसरा गुणस्थानक प्रगति का नहीं बल्कि पतन का है ।

पहले गुणस्थानक में रही आत्मा दूसरे गुणस्थानक में नहीं जाती है, बल्कि चौथे गुणस्थानक से गिरने वाली आत्मा ही दूसरे गुणस्थानक का स्पर्श करती है ।

उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर जब वह आत्मा सम्यग्दर्शन से च्युत होती है तब, जब तक वह मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं करती है, उस बीच वह सास्वादन गुणस्थानक में होती है ।

इस गुणस्थानक का काल एक समय से लेकर छह आवलिका तक है ।

यह गुणस्थानक उपशमश्रेणी अथवा उपशम सम्यक्त्व से च्युत जीव को ही होता है ।

कोई भी जीव इस भवचक्र में अधिक से अधिक चार बार उपशम श्रेणी पर चढ़ सकता है, अतः उपशम श्रेणी से गिरते समय मिथ्यात्व को पाने के

पूर्व चार बार और उपशम सम्यक्त्व से गिरते समय एक बार, इस प्रकार कुल पाँच बार सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त कर सकता है ।

उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब सर्वप्रथम अपने कर्मों की स्थिति को कम करता है । सम्यक्त्व-प्राप्ति के पूर्व आत्मा तीन करण करती है ।

(1) यथा- प्रवृत्ति-करण :- सभी कर्मों की स्थिति को घटा कर उसे अंतः कोटा-कोटि सागरोपम जितनी बना देती है, उसे यथा प्रवृत्तिकरण कहते है ।

पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग न्यून ऐसी एक कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति को अंतः कोटा-कोटि सागरोपम कहते हैं ।

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है–

1) मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोडाकोडी सागरोपम है ।

2) नाम एवं गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोडाकोडी सागरोपम है ।

3) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोटाकोटि सागरोपम है ।

4) आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागरोपम है ।

अनादि काल से आत्मा में राग-द्वेष के गाढ अध्यवसाय रूप ग्रंथि (गाँठ) रही हुई है । यह ग्रंथि अत्यंत ही दुर्भेद्य है ।

तथाभव्यत्व के योग से आत्मा जब कर्मों की स्थिति को अंतः कोटाकोटि सागरोपम जितनी बना देती है, उस स्थिति को ग्रंथिदेश कहते है ।

अचरमावर्त में रही भव्य और अभव्य आत्मा तथा चरमावर्त में रही भव्य आत्मा भी अनंती बार ग्रंथिदेश पर आती हैं, परंतु पुनःसंक्लेशजन्य परिणाम आने पर पुनः कर्मों की स्थिति को बढ़ा देती है । इस प्रकार आत्मा का पुरुषार्थ निष्फल जाता है ।

(2.) अपूर्वकरण :- अनादि इस संसार में पहले कभी भी प्राप्त नहीं हुए विशुद्ध अध्यवसायों को आत्मा प्राप्त करती है, उसे अपूर्वकरण कहते हैं ।

इस अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही आत्मा स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणी और अपूर्व स्थिति बंध को प्रारंभ करती है ।

1. स्थितिघात :- ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की जो स्थिति है, उसमें जघन्य से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट से सैकड़ों सागरोपम की स्थिति को खत्म करना, उसे स्थितिघात कहते हैं ।

2. रसघात :- कषाय और लेश्या के द्वारा कर्म-परमाणुओं में शुभ-अशुभ फल देने की जो शक्ति पैदा की जाती है, उसे रस कहते हैं । अपवर्तनाकरण द्वारा उस अशुभ प्रकृति के रस को नष्ट करना, उसे रसघात कहते हैं ।

3. गुणश्रेणी :- गुणश्रेणी द्वारा जीव असंख्यात गुणाकार कर्म दलिकों को भोग कर नष्ट कर देता है इसके फलस्वरूप जीव लघुकर्मी बनता है ।

4. अपूर्व स्थिति बंध :- शुभ अध्यवसायों के द्वारा आत्मा पहले के स्थितिबंध की अपेक्षा नया-नया स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितना कम-कम होता जाता हैं ।

पहले कभी नहीं हुए ऐसे अल्प स्थितिबंध को अपूर्व स्थितिबंध कहते हैं ।

अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिघात और अपूर्व स्थितिबंध दोनों का प्रारंभ एक साथ होता है और एक साथ पूर्ण होता है, अतः दोनों का अन्तर्मुहूर्त एक समान है ।

इस प्रकार अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिघात आदि चारों वस्तुओं का एक साथ प्रारंभ होता है, उसके साथ ही ग्रंथिभेद की प्रक्रिया चालू हो जाती है ।

उसके बाद अनादिकालीन राग-द्वेष के तीव्र परिणाम रूप दुर्भेद्य ऐसी गाँठ को भेदकर आत्मा अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करती है ।

(3) अनिवृत्तिकरण :- एक साथ ग्रंथिभेद करनेवाले सभी जीवों के अध्यवसाय एक समान हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त में से बहुत से संख्याता भाग जाने पर जब एक संख्याता भाग बाकी रहता है, तब जीव अंतरकरण करता है ।

अंतरकरण अर्थात् खाली करने की प्रक्रिया । उस समय मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की स्थिति दो भागों में विभक्त हो जाती है । नीचे के भाग को प्रथम स्थिति और ऊपर के भाग को द्वितीय स्थिति कहते हैं । उन दोनों के बीच में मिथ्यात्व के दलिक बिना की शुद्ध स्थिति बनती है, उसे उपशम अद्धा कहते हैं ।

प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और द्वितीय स्थिति अंतः कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होती है ।

अंतरकरण के बाद जीव प्रथम स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्म-दलिकों को विपाकोदय द्वारा भोगकर नष्ट करता है और द्वितीय स्थिति में रहे कर्मदलिकों को उपशांत करता रहता है ।

जब प्रथम स्थिति के कर्म दलिक नष्ट हो जाते हैं, तब मिथ्यात्व मोहनीय का बंध और उदय रुक जाता है और दूसरी स्थिति में रहे कर्म दलिक उपशांत हो जाते हैं । उसी समय जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता हैं ।

उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय जीव को जन्मांध व्यक्ति को आँखों की प्राप्ति से भी अधिक आनंद की प्राप्ति होती है ।

सास्वादन सम्यक्त्वः- उपशम सम्यक्त्व का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छह आवलिका जितना बाकी हो तब अनंतानुबंधी कषाय का उदय हो जाय तो उपशम सम्यक्त्व से गिरता हुआ सास्वादन सम्यक्त्व प्राप्त करता है, वहाँ से आत्मा अवश्य ही मिथ्यात्व को प्राप्त करती है ।

(3) मिश्र गुणस्थानक :- यह गुणस्थानक भी चढ़ने का गुणस्थानक नहीं है, बल्कि चौथे गुणस्थानक से च्युत हुई आत्मा को ही यह गुणस्थानक होता है ।

मिश्र अर्थात् न सम्यग्दृष्टि है और न मिथ्यादृष्टि है ।

जिस प्रकार दही और खांड के मिश्रण से बने श्रीखंड में न तो सिर्फ दही का स्वाद होता है और न ही सिर्फ खांड का । उसी प्रकार मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से न तो सम्यक्त्व की शुद्धि का अनुभव होता है और न ही मिथ्यात्व की मलिनता का ।

जिस प्रकार नालियर द्वीप में रहे मनुष्य को न चावल पर राग होता है और न ही चावल पर द्वेष ! बस, इसी प्रकार इस गुणस्थानक में रही आत्मा को सर्वज्ञ भगवंत के वचन पर न तो राग होता है और न ही द्वेष ।

मिश्रगुणस्थानक का काल एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, अन्तर्मुहूर्त के बाद या तो आत्मा अशुद्ध अध्यवसायों को प्राप्तकर मिथ्यात्व नाम के पहले गुणस्थानक में जाती है अथवा विशुद्ध अध्यवसायों द्वारा चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा परलोक संबंधी आयुष्य का बंध नहीं करती है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा की मृत्यु भी नहीं होती है ।

इस गुणस्थानक में मारणांतिक समुद्घात नहीं होता है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा संयम या देशसंयम को ग्रहण नहीं करती है ।

(4) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक :- हिंसा आदि पापत्याग के परिणाम (अध्यवसाय) को विरति कहते हैं और उन पापों के त्याग के अभाव को अविरति कहते हैं ।

चौथे गुणस्थानक में रही आत्मा में विरति के परिणाम का अभाव होने के कारण इस गुणस्थानक को अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक कहते हैं ।

इस गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होता है । इस गुणस्थानक में रही आत्मा को जिनेश्वर भगवंत के वचन पर पूर्ण और दृढ़ श्रद्धा होती है ।

'तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहिं पवेइयं-' जो जिनेश्वर ने कहा है, वह सत्य और निःशंक है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा सम्यग्दृष्टि को होती है ।

विरति का यथार्थ बोध होने पर भी इस गुणस्थानक में पाप के त्याग का अभाव होता है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा को संसार भयंकर कैद jail समान लगता है ।

सम्यग्दृष्टि का शरीर सांसारिक प्रवृत्तियों में जुड़ा होने पर भी उसका मन तो मोक्ष में और मोक्षसाधक देव-गुरु-धर्म की प्रवृत्ति में ही रमण करता है ।

जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा आदि पापप्रवृत्ति करने पर भी **'तप्तलोह-पद न्यासं'** की भाँति दुःखी हृदय से करता है ।

हाथ-पैर में बेड़ी वाले भूखे व्यक्ति को थाल में पिरसे स्वादिष्ट भोजन को खाने की तीव्र इच्छा होती है परंतु खा नहीं सकता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को विरति पाने की तीव्र अभिलाषा होने पर भी अप्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय के कारण लेश भी पापत्याग नहीं कर पाता है, इसका उसके हृदय में अत्यंत दुःख होता है ।

पहले के तीन गुणस्थानकों की अपेक्षा इस गुणस्थान में अध्यवसायों की विशुद्धि अनंतगुणी होती है ।

सर्व प्रथम बार कौनसा सम्यक्त्व ?

कर्म ग्रंथ के मत से अनादि मिथ्यादृष्टि सर्वप्रथम बार उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करता है, जबकि **सिद्धांत** के मत से अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्वप्रथम बार उपशम अथवा क्षयोपशम सम्यक्त्व में से कोई भी प्राप्त कर सकता है ।

(1) सिद्धांत के मत से जब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब यथाप्रवृत्त करण आदि तीन करण कर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त-स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्मदलिकों के तीन पुंज नहीं करता है अतः उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने पर वह आत्मा अवश्य मिथ्यात्व गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

(2) अनादि मिथ्यादृष्टि जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब अपूर्वकरण के द्वारा ग्रंथिभेद करके, ऊपर मिथ्यात्व की अंतः कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्मदलिकों के तीन पुंज करता है । अपूर्वकरण के बाद जब शुभ पुंज का उदय होता है, तब जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

सम्यक्त्व के 5 लक्षण :-

मिथ्यात्व के क्षय, उपशम या क्षयोपशम को चर्म-चक्षु द्वारा देख नहीं सकते हैं, परंतु निम्न लिखित लक्षणों से अनुमान कर सकते हैं ।

(1) शम :- अनंतानुबंधी कषाय का अभाव ।

(2) संवेग :- मोक्षसुख की तीव्र अभिलाषा ।

(3) निर्वेद :- संसार के सुखों के प्रति वैराग्य भाव ।

(4) अनुकंपा :- दुःखी प्राणियों को देख हृदय द्रवित हो जाना ।

(5) आस्तिक्य :- वीतराग के वचनों पर अविचल श्रद्धा ।

सम्यक्त्व के भेद :-

(1) निसर्ग और अधिगम सम्यक्त्व :- गुरु के उपदेश, जिनबिंब आदि बाह्य आलंबन के बिना ही तथाभव्यत्व के परिपाक से जो सम्यक्त्व प्राप्त होता है, वह **निसर्ग सम्यक्त्व** कहलाता है- और गुरु के उपदेश आदि बाह्य निमित्तों को पाकर जो सम्यक्त्व होता है, वह **अधिगम सम्यक्त्व** कहलाता है ।

(2) निश्चय और व्यवहार सम्यक्त्व :- सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रमणता पूर्वक आत्म परिणाम को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं और सुदेव आदि

को मानना एवं कुदेव आदि को नहीं मानना, यह व्यवहार सम्यक्त्व है ।

(3) क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यक्त्व :- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ (अनंतानुबंधी चतुष्क) तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय आदि सात प्रकृतियों (दर्शन सप्तक) के क्षय से प्राप्त सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता हैं ।

उदयावलिका में प्राप्त मिथ्यात्व मोहनीय आदि प्रकृतियों के क्षय और अनुदय में रही प्रकृतियों के उपशम से प्राप्त सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

दर्शन सप्तक के उपशमन से प्राप्त सम्यक्त्व को औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ग्रंथिभेदजन्य सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब अध्यवसायों की विशुद्धि हो तो देशविरति और सर्वविरति भी प्राप्त कर सकता है, अतः यह सम्यक्त्व 4 से 7 गुणस्थानक तक होता है ।

उपशमश्रेणी में 8 से 11 गुणस्थानक तक उपशम सम्यक्त्व होता है ।

चारो गति के संज्ञी जीव उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, परंतु क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रारंभ साधिक आठ वर्ष की उम्र वाला पहले संघयणवाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही कर सकता है ।

अबद्ध आयुष्यवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ने तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित नहीं किया हो तो वह उसी भव में मोक्ष में जाता है ।

बद्ध आयुष्यवाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अधिकतम तीन या चार भव करता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व का काल सादि-अनंत है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि साधिक 33 सागरोपम तक संसार में रहकर अवश्य मोक्ष में जाता है ।

क्षयोपशम सम्यक्त्व साधिक 66 सागरोपम तक रह सकता है ।

उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त ही है ।

एक जीव को भवचक्र में क्षायिक सम्यक्त्व एक बार, औपशमिक और सास्वादन सम्यक्त्व **5** बार और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व असंख्य बार प्राप्त हो सकता है ।

(5) देशविरति गुणस्थानक :-

प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से जो जीव पाप प्रवृत्तियों का

सर्वथा त्याग तो नहीं कर सकते, परंतु जो पापों के आंशिक त्याग की प्रतिज्ञा लेते हैं, वे देशविरत श्रावक कहलाते है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा सम्यक्त्व से युक्त होती है अर्थात् जिनेश्वर के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखती है । त्रसादि जीवों की हिंसा का त्याग करती है ।

श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रत हैं । इस गुणस्थानक में रही आत्मा एक दो से लेकर यावत् बारह व्रतों का स्वीकार करती है ।

कई श्रावक, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का भी स्वीकार करते हैं ।

देशविरतिधर श्रावक को सर्वविरति को स्वीकार की तीव्र अभिलाषा होती है । प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से वह आत्मा सर्वविरति को स्वीकार नहीं कर पाती है, फिर भी आंशिक त्याग से आगे बढ़कर संवास अनुमति सिवाय के सभी पापों का त्याग कर सकती है ।

अनुमति के तीन प्रकार हैं-

(1) प्रतिसेवन अनुमति :- अपने या दूसरे के किये भोजन का उपयोग करता है, जो स्वयं या स्वजन के पाप-कार्यों की अनुमोदना करता है, वह प्रतिसेवन अनुमति है ।

(2) प्रतिश्रवण अनुमति :- जो पुत्र आदि के पापकार्यों को सुनता है और अनुमोदन करता है परंतु निषेध नहीं करता है, वह प्रतिश्रवण अनुमति है ।

(3) संवास अनुमति :- जो पुत्रादि के पापकार्यों को सुनता भी नहीं है और अनुमोदना भी नहीं करता है, फिर भी पुत्रादि के साथ में रहने के कारण संवास अनुमति का दोष लगता है ।

इन तीन में से संवास अनुमति को छोड़ जो दो का त्याग करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक की अपेक्षा इस गुणस्थानक में अनंतगुणी विशुद्धि होती है ।

अप्रत्याख्याणीय चतुष्क का क्षयोपशम होने पर जीवात्मा को देशविरति-धर्म की प्राप्ति होती है ।

देशविरति गुणस्थानक संख्याता वर्ष के आयुष्य वाले युगलिक सिवाय के तिर्यंच और मनुष्य को होता है ।

युगलिक मनुष्य और तिर्यंच को 1 से 4 गुणस्थानक होते हैं ।

जिस मनुष्य ने युगलिक तिर्यंच का आयुष्य बांधने के बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो वह मनुष्य मरकर युगलिक तिर्यंच बनेगा, परंतु वहाँ चौथा ही गुणस्थानक होगा, वह 5 वें गुणस्थानक को प्राप्त नहीं करेगा ।

कोई भी देशविरति तिर्यंच क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं करते हैं । पाँचवें गुणस्थानक में तिर्यंचगति में क्षायिक सम्यक्त्व को छोड उपशम और क्षयोपशम दो ही सम्यक्त्व होते हैं ।

देशविरति गुणस्थानक में पापों की आंशिक विरति होती है अर्थात् उन पापों के त्याग की प्रतिज्ञा होती है, जैन दर्शन की मान्यता है कि पापत्याग की प्रतिज्ञा न हो तो पाप न करने पर भी पाप का बंध होता है ।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशन्यून पूर्व करोड़ वर्ष है ।

(6) सर्वविरति गुणस्थानक :-

मन, वचन और काया से, करण-करावण और अनुमोदन से सभी पाप प्रवृत्तियों का त्याग जिस गुणस्थानक में होता है, उसे सर्वविरति गुणस्थानक कहते हैं ।

इस गुणस्थानक में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप पापों का सर्वथा त्याग होता है । इस गुणस्थानकवर्ती संयमी महात्मा को भी संज्वलन कषाय का उदय होने से निद्रा आदि प्रमाद होता है, अतः इसे **प्रमत्त संयत गुणस्थानक** भी कहते हैं ।

यह गुणस्थानक सिर्फ मनुष्य को ही प्राप्त होता है ।

इस गुणस्थानक में देशविरति की अपेक्षा विशुद्धि का प्रकर्ष होता है और अप्रमत्त गुणस्थानक की अपेक्षा विशुद्धि का अपकर्ष होता है ।

इस गुणस्थानक की स्थिति जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से कुछ न्यून एक करोड पूर्व वर्ष है ।

इससे आगे के गुणस्थानक भी सिर्फ मनुष्य को ही होते हैं ।

इसी गुणस्थानक में चौदह पूर्वी अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग करते हैं ।

इस गुणस्थानक में प्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होता है ।

देशविरति-सर्वविरति में अंतर :-

1 आंशिक पापों से विरति को देशविरति कहते हैं ।

संपूर्ण पापों से विरति को सर्वविरति कहते हैं ।

2 अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से देशविरति और प्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से सर्वविरति की प्राप्ति होती है ।

3 जघन्य से एक और उत्कृष्ट से बारह व्रतधारी श्रावक कहलाता है ! जीवन पर्यंत सामायिक और पाँच महाव्रतों को स्वीकार करने वाला सर्वविरति संयमी कहलाता है ।

4 संख्याता वर्ष के आयुष्यवाले मनुष्य व तिर्यंच ही देशविरति धर्म को स्वीकार कर सकते हैं ।

संख्याता वर्ष के आयुष्यवाला मनुष्य ही सर्वविरति धर्म को स्वीकार कर सकता है ।

5 देशविरतिधर असंख्यात होते हैं ।

सर्वविरतिधर दो हजार करोड़ से 9 हजार करोड़ तक होते हैं ।

6 देशविरति का जघन्य काल एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देश न्यून पूर्व करोड़ वर्ष है ।

सर्वविरति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

7 एक जीव को एक भव में दो हजार से नौ हजार बार और संपूर्ण भवचक्र में असंख्य बार देशविरति के परिणाम जा आ सकते हैं ।

एक जीव को एक भव में 200 से 900 बार और एक भवचक्र में 2000 से 9000 बार सर्व विरति के परिणाम आते और जाते हैं ।

दर्शन मोहनीय और अनंतानुबंधी आदि 12 कषायों के क्षयोपशम बिना चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है, अतः भाव चारित्र के लिए दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम जरूरी है । इसके साथ ज्ञानावरणीय आदि तीन घातिकर्मों का क्षयोपशम भी जरूरी है । अष्ट प्रवचनमाता के बोध के लिए ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

ईर्यासमिति आदि के पालन के लिए चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन का क्षयोपशम चाहिए ।

विहार आदि के लिए वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

इस प्रकार चारित्र-पालन हेतु सभी घातिकर्मों के क्षयोपशम की अपेक्षा रहती है ।

अभव्य आत्मा भी चारित्र स्वीकार करती है, परंतु उसका चारित्र द्रव्य चारित्र ही होता है, क्योंकि अभव्य आत्मा को दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का कभी क्षयोपशम नहीं होता है ।

अभव्य आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म के क्षयोपशम के कारण द्रव्य चारित्र का पालन कर सकती है ।

दर्शनमोहनीय और अंनतानुबंधी आदि बारह कषायों के क्षयोपशम से होने वाला चारित्र भाव चारित्र कहलाता है और उसके नीचे के गुणस्थानकों में होने वाला चारित्र, द्रव्य चारित्र कहलाता है ।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानकों में चारित्र का पालन होता है, परंतु चारित्र का परिणाम (भाव) नहीं होता है ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से देशविरति धर्म की प्राप्ति होती है और प्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से सर्व विरति धर्म की प्राप्ति होती है ।

अभव्य जीव द्रव्य चारित्र के प्रभाव से नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता है ।

7 वाँ अप्रमत्त गुणस्थानक :-

जिस संयमी आत्मा के व्यक्त या अव्यक्त प्रमाद नष्ट हो गया हो, वह आत्मा 7वें अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करती है । इस गुणस्थानक में निद्रा आदि प्रमाद का सर्वथा अभाव होने से इसे अप्रमत्त गुणस्थानक कहते हैं ।

छठे गुणस्थानक में प्रमाद होने से व्रतों में अतिचार आदि दोष लगता है, जब कि इस गुणस्थानक में प्रमाद का सर्वथा अभाव होने से व्रत में अतिचार दोष नहीं लगता है ।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है । उसके बाद अप्रमत्त महात्मा या तो आठवें गुणस्थानक को प्राप्तकर उपशम या क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हैं अथवा नीचे छठे गुणस्थानक में आ जाते हैं ।

इस गुणस्थानक से आगे के सभी गुणस्थानकों में आत्मा अप्रमत्त ही होती है ।

इस गुणस्थानक में संज्वलन और नो कषाय का मंद उदय होता है ।

प्रमाद और अप्रमादभाव का एक-एक अन्तर्मुहूर्त में परिवर्तन होता रहता है, अतः देशोन पूर्व कोटि वर्ष तक झूले की भाँति जीव छट्ठे से सातवें और सातवें से छट्ठे गुणस्थानक में गमनागमन करता रहता है ।

इसी गुणस्थानक में जंघाचारण, विद्याचारण आदि लब्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

जो अप्रमत्त आत्मा मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय या उपशम कर श्रेणी पर चढ़ने का प्रारंभ करती है, वह आत्मा इस गुणस्थानक में श्रेणी संबंधी अपूर्वकरण करती है ।

(8) वाँ अपूर्वकरण गुणस्थानक :-

अनादि इस संसार में ऐसे अध्यवसाय पहले कभी भी नहीं आए होने से इस गुणस्थानक को `अपूर्वकरण गुणस्थानक' कहते हैं ।

पहले कभी नहीं हुई ऐसी स्थितिघात आदि क्रियाएँ इस गुणस्थान में होती हैं ।

उपशम या क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाली आत्मा ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

यद्यपि उपशम व क्षपक श्रेणी का प्रारंभ नौवें गुणस्थानक में होता है, परंतु उसकी आधारशिला इसी गुणस्थानक में रखी जाती है ।

आठवें गुणस्थानक में आत्मा स्थितिघात आदि 5 वस्तुएँ करती है ।

1. स्थितिघात :- अपवर्तनाकरण द्वारा कर्मों की दीर्घ स्थिति को कम करना अर्थात् जो कर्मदलिक आगे उदय में आनेवाले हैं उन्हें अपवर्तनाकरण के द्वारा अपने उदय के नियत समय से हटा देना, उसे स्थितिघात कहते हैं ।

2. रसघात :- अपवर्तनाकरण द्वारा बँधे हुए ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के फल देने की तीव्र शक्ति को मंद कर देना, उसे रसघात कहते हैं ।

3. गुण श्रेणी :- जिन कर्मदलिकों का स्थितिघात किया जाता है अर्थात् जो कर्मदलिक अपने उदय के नियत स्थान से हटाये गए हों उन्हें समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त में स्थापित कर देना, उसे गुणश्रेणी कहते हैं ।

4. गुण संक्रमण :- पहले बँधी हुई अशुभ प्रकृतियों को वर्तमान में बँधनेवाली शुभ प्रकृतियों में बदल देना उसे गुण संक्रमण कहते हैं ।

5. अपूर्व स्थितिबंध :- पहले की अपेक्षा अत्यंत अल्प स्थितिवाले कर्मों को बाँधना, उसे अपूर्व स्थितिबंध कहते हैं ।

यद्यपि ये पाँचों प्रक्रियाएँ सम्यक्त्व प्राप्ति के साथ पहले गुणस्थानक में भी बनती हैं, परंतु आठवें गुणस्थानक में कुछ अपूर्व ही होती हैं । क्योंकि पहले गुणस्थानक की अपेक्षा आठवें गुणस्थानक में विशुद्धि ज्यादा ही होती है ।

चारित्र मोहनीय कर्म के संपूर्ण क्षय या उपशमन के लिए तीन करण- यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करने होते हैं, उनमें यथाप्रवृत्तिकरण 7वें गुणस्थानक में, अपूर्वकरण 8वें गुणस्थानक में और अनिवृत्तिकरण 9वें गुणस्थानक में होता है ।

जो अपूर्वकरण गुणस्थानक को प्राप्त कर चुके हैं, प्राप्त कर रहे हैं और आगे प्राप्त करेंगे- उन सब जीवों के अध्यवसाय स्थानों की संख्या, असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश बराबर है ।

अपूर्वकरण गुणस्थानक के प्रथम समयवर्ती त्रैकालिक (भूत, भविष्य और वर्तमान) सभी जीव समान कषाय उदयवाले होने पर भी उन सबकी लेश्या एक समान नहीं होती है, अतः उनके अध्यवसायों में तरतमता होती है, उन्हें छह भागों में बाँटा गया है ।

• कुछ जीवों के सबसे कम विशुद्धि होती है, उसे प्रथम अध्यवसाय स्थान कहते हैं । उसकी अपेक्षा कुछ जीवों के अध्यवसाय अधिक विशुद्धिवाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय प्रथम विशुद्धि स्थान की अपेक्षा असंख्यात भाग अधिक विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात भाग अधिक विशुद्धिवाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात गुण विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यात गुण विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंतगुण विशुद्धि वाले होते हैं ।

इस प्रकार जघन्य विशुद्धि स्थान की अपेक्षा उपर्युक्त षट्स्थान वृद्धि स्थान हुए ।

उसी प्रकार उत्कृष्ट विशुद्धि स्थान की अपेक्षा षट्स्थान हानि वाले स्थान भी होते हैं ।

उदा- अपूर्वकरण के प्रथम समय जो सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि स्थान थे, उसकी अपेक्षा कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंत भाग हीन.

कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यात भाग हीन,

कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात भाग हीन होते हैं ।

कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यातगुण हीन

कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यातगुण हीन और

कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंतगुण हीन होते हैं ।

ऊर्ध्वमुखी शुद्धि :- प्रथम समय के अध्यवसायों की अपेक्षा दूसरे समय के अध्यवसाय भिन्न ही होते हैं ।

प्रत्येक समय के जघन्य अध्यवसाय की अपेक्षा उसी समय के उत्कृष्ट अध्यवसाय अनंतगुण विशुद्ध समझने चाहिए तथा पूर्व-पूर्व समय के उत्कृष्ट अध्यवसायों की अपेक्षा आगे-आगे के समय के अध्यवसाय भी अनंतगुण विशुद्ध समझने चाहिए ।

इस गुणस्थानक का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

(9) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक :-

इस गुणस्थानक का पूरा नाम अनिवृत्ति बादर संपराय गुणस्थानक है ।

इस गुणस्थानक में बादर अर्थात् स्थूल कषायों का उदय होता है ।

इस गुणस्थानक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

एक अन्तर्मुहूर्त के जितने समय होते हैं, उतने ही इस गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान होते हैं ।

इस गुणस्थानक में प्रवेश करनेवाले सभी जीवों के (भूत, भविष्य और वर्तमान) अध्यवसाय एक समान ही होते हैं ।

इसके बाद दूसरे-तीसरे आदि समय में भी सभी जीवों के अध्यवसाय समान ही होते हैं ।

इस गुणस्थानक के जितने समय-उतने ही अध्यवसाय स्थान होने से प्रत्येक समय में एक ही परिणाम होता है ।

भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न परिणाम हो सकते हैं परंतु एक समयवर्ती जीवों के एक ही समान परिणाम होते हैं ।

इस गुणस्थानक को दो प्रकार के जीव प्राप्त करते हैं- (1) उपशमक और (2) क्षपक ।

जो जीव चारित्र मोहनीय का उपशमन करते हैं, वे उपशमक कहलाते हैं ।

जो जीव चारित्र मोहनीय का क्षय करते हैं, वे जीव क्षपक कहलाते हैं ।

आठवें-नौवें गुणस्थानक में अंतर :-

(1) आठवें गुणस्थानक में प्रवेश करने वाले सभी जीवों की विशुद्धि एक समान नहीं होती है, अर्थात् उसमें तरतमता होती है ।

जब कि नौवें गुणस्थानक में प्रवेश करने वाले सभी जीवों की विशुद्धि एक समान होती है ।

(2) आठवें गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान असंख्य-लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं ।

नौवें गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान अन्तर्मुहूर्त के जितने समय, उतने हैं ।

(3) आठवें गुणस्थानक में स्थितिघात आदि क्रियाएँ होती हैं ।

नौवें गुणस्थानक में उपशमक आत्मा मोहनीय कर्म का उपशमन करती है और क्षपक आत्मा मोहनीय कर्म का क्षय करती है ।

(4) आठवें गुणस्थानक में, नौवें गुणस्थानक की अपेक्षा अनंतगुणहीन विशुद्धि होती है ।

नौवें गुणस्थानक में आठवें गुणस्थानक की अपेक्षा अनंतगुणी विशुद्धि होती है ।

(10) वाँ सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक :-

इस गुणस्थानक में लोभ के सूक्ष्म खंडों का उदय होने से इस गुणस्थानक का नाम सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक है । इस गुणस्थानक में जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खंडों का वेदन करता है ।

यह गुणस्थानक उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले उपशमक और क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले क्षपक, इन दोनों को ही होता है ।

जो उपशमक होते हैं, वे लोभ कषाय के सूक्ष्म अंश का उपशमन करते हैं और जो क्षपक होते हैं, वे लोभ कषाय के सूक्ष्म अंश का क्षय करते हैं ।

इस गुणस्थानक की जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट स्थिति

अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

(11) वाँ उपशांत कषाय, छद्मस्थ वीतराग गुणस्थानक..

इस गुणस्थानक में कषायों का सर्वथा उपशमन होने के कारण इस गुणस्थानक को उपशांतमोह गुणस्थानक भी कहते हैं ।

इस गुणस्थानक में मोहनीय कर्मों की सत्ता तो होती है, परंतु उदय नहीं होता है ।

इस गुणस्थानक में रहा जीव आगे के गुणस्थानकों को प्राप्त नहीं करता है, क्योंकि क्षपक श्रेणी में रही आत्मा ही आगे के गुणस्थानकों को प्राप्त कर सकती है ।

उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाली आत्मा ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है । इस गुणस्थानक से जीव अवश्य गिरता है ।

गुणस्थानक का समय पूरा न होने पर भी यदि आयुष्य का क्षय हो जाता है तो वह आत्मा अवश्य ही अनुत्तर विमान में पैदा होती है, वहाँ पाँचवें आदि गुणस्थानकों की संभावना नहीं होने से वहाँ चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करती है। वह जीव उस गुणस्थानक के योग्य प्रकृतियों के बंध, उदय, उदीरणा आदि का प्रांरभ कर देता है ।

जो आत्मा ग्यारहवें गुणस्थानक को पूर्ण कर नीचे गिरती है, वह आत्मा पतन के समय, आरोहण क्रम के अनुसार गुणस्थानक को प्राप्त करती है, और उस गुणस्थानक के योग्य कर्म प्रकृतियों के बंध आदि का प्रांरभ कर देती है ।

कालसमाप्ति के बाद इस गुणस्थानक से गिरने वाली कोई आत्मा छठे गुणस्थानक को, कोई पाँचवें गुणस्थानक को, कोई चौथे गुणस्थानक को और कोई दूसरे गुणस्थानक से होकर पहले गुणस्थानक में आ जाती है ।

उपशम श्रेणी का स्वरूप

श्रेणिगत उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति :- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव चौथे से सातवें गुणस्थानक में जीव सर्व प्रथम अनंतानुबंधी कषायों की विसंयोजना करता है, मतांतर से उपशमन करता है । उसके बाद प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानक में रही आत्मा दर्शन का उपशमन कर श्रेणिगत उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करती है ।

इसके बाद जीव छठे-सातवें गुणस्थानक में आता-जाता है ।

फिर आठवें से नौंवें गुणस्थानक को प्राप्त करता है, जहाँ चारित्र मोहनीय की शेष प्रकृतियों का उपशमन प्रारंभ करता है ।

उसके बाद नपुंसक वेद, स्त्री वेद, हास्यादि षट्क, पुरुष वेद का उपशमन करता है ।

फिर एक साथ में अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय क्रोध, उसके बाद संज्वलन क्रोध, फिर अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय मान फिर संज्वलन मान, उसके बाद अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय माया, फिर संज्वलन माया का उपशमन करता है फिर अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय लोभ का उपशमन कर जीव दसवें गुणस्थानक में प्रवेश करता हैं ।

10वें गुणस्थानक में जीव संज्वलन लोभ का उपशमन करता है ।

उपशमक जीव जब सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक के चरम समय में प्रवेश करता है, तब संज्वलन लोभ संपूर्ण शांत हो जाता है, उस समय मोहनीय की 28 प्रकृतियाँ संपूर्ण शांत हो जाती हैं ।

उसके बाद के समय में अंतरकरण में प्रवेश करने के साथ ही उपशांत मोह गुणस्थानक में औपशमिक वीतरागता प्राप्त होती है ।

राख से ढकी हुई अग्नि (अंगारे) की तरह जब तक मोहनीय कर्म उपशांत रहता है, तब तक जीव वीतरागता का अनुभव करता है, उसके बाद कषाय का उदय हो जाने से उपशांत अवस्था नष्ट हो जाती है । उस समय जीव का अवश्य पतन होता है । उपशम श्रेणी में ही जीव का आयुष्य पूरा हो जाय तो जीव वैमानिक देव बनता है और वहाँ सीधे चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करता है ।

11वें गुणस्थानक का काल पूर्ण होने पर जीव वहाँ से आगे नहीं जा सकता है, अतः वहाँ से क्रमश :- 10-9-8-7वें गुणस्थानक से गिरकर छठे गुणस्थानक में आता है, कोई जीव वहाँ 5वें में तो कोई चौथे में आता है तो कोई वहाँ से पहले मिथ्यात्व में आता है ।

भिन्न-भिन्न मत :-

संपूर्ण भवचक्र में एक जीव चार बार उपशम श्रेणी प्राप्त कर सकता है । **कर्म ग्रंथ** के मत से एक जीव एक भव में एक बार उपशमश्रेणी पर चढ़ा

हो तो उसी भव में क्षपक श्रेणी पर भी चढ़ सकता है, परंतु एक भव में दो बार उपशम श्रेणी पर चढने वाला उसी भव में क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ सकता है। सिद्धान्त के मत से एक भव में एक ही बार उपशम श्रेणी पर चढ़ सकते है और एकवार उपशम श्रेणी पर चढ़ा जीव उसी भव में क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ़ सकता है ।

गुणस्थानकों में ऊर्ध्व आरोहण :-

(1) पहले गुणस्थानक में रहा जीव चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें गुणस्थानक को प्राप्त कर सकता है ।

(2) चौथे गुणस्थानक से जीव तीसरे गुणस्थानक में जा सकता है ।

(3) चौथे गुणस्थानक से जीव 5वें, छठे, सातवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

(4) पाँचवें गुणस्थानक से जीव छठे व सातवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

(5) छठे गुणस्थानक से जीव सातवें में जा सकता है ।

(6) सातवें से जीव 8वें, आठवें से नौवें, नौवें से दसवें एवं दसवें से ग्यारहवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

(12) वाँ क्षीणमोह छद्मस्थ वीतराग गुणस्थानक :-

मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय होने पर इस गुणस्थानक की प्राप्ति होती है । यह गुणस्थानक क्षपक श्रेणी करनेवाली आत्मा को ही प्राप्त होता है ।

मोहनीय का नाश होने पर भी इस गुणस्थानक में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की भी सत्ता रहती है, अतः इस गुणस्थानक में भी आत्मा छद्मस्थ कहलाती है ।

क्षपक श्रेणी में रही आत्मा दसवें गुणस्थानक को पार कर सीधे ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य और उत्कृष्ट से एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

इस गुणस्थानक के चरम समय में आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म का भी सर्वथा क्षय कर देती है और वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अनंतवीर्य गुण संपन्न बनती है । वीतरागता, सर्वज्ञता आदि गुण क्षायिक गुण

होने से अब एक बार आने के बाद कभी जाते नहीं है ।

सर्वज्ञ बनी आत्मा अब भविष्य में कभी भी असर्वज्ञ नहीं बनती है ।

क्षपक श्रेणी का स्वरूप

क्षपक श्रेणी का प्रारंभ मनुष्य ही कर सकता है जिसकी उम्र आठ वर्ष से कुछ अधिक होनी जरूरी है । क्षपक श्रेणी के लिए प्रथम संघयण भी जरूरी है ।

सर्व प्रथम क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाली आत्मा चौथे से सातवें गुणस्थानक में अनंतानुबंधी कषायों का क्षय करती है, उसके बाद दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ, समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय, और मिथ्यात्व मोहनीय का भी क्षय करती है ।

उसके बाद आठवें गुणस्थानक में आत्मा अप्रत्याख्यानीय और प्रत्याख्यानीय चतुष्क के क्षय का प्रारंभ करती है, परंतु बीच में ही नौवें गुणस्थानक को प्राप्तकर थीणद्धित्रिक, नरक द्विक, तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रिय आदि जाति चतुष्क, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण नाम कर्म- इन 16 प्रकृतियों का नाश कर देती है, फिर अन्तर्मुहूर्त बाद कषाय अष्टक का क्षय करती है ।

उसके बाद नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यषट्क, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और बादर लोभ इन 10 प्रकृतियों का क्षय करती है, तब नौवाँ गुणस्थानक का काल पूरा हो जाता है ।

फिर 10वें गुणस्थानक में सूक्ष्म संज्वलन लोभ का क्षयकर आत्मा यथाख्यात चारित्र प्राप्त करती है ।

उसके बाद आत्मा 12वें गुणस्थानक को प्राप्त करती है, जिसके द्विचरम समय में निद्राद्विक और अंतिम समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 और अंतराय की 5 इन 14 प्रकृतियों का संपूर्ण क्षय कर सर्वज्ञ बनती है ।

विसंयोजना और क्षय में अंतर

जिस कर्मप्रकृति की विसंयोजना हुई हो उसका पुनः बंध संभव है, परंतु जिस कर्मप्रकृति का क्षय हुआ हो उसका पुनः बंध नहीं होता है ।

विसंयोजना सिर्फ अनंतानुबंधी चतुष्क की ही होती है ।

उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी में अंतर :-

(1) परिणामों की विशुद्धि द्वारा जीव उपशम श्रेणी में चारित्र मोहनीय कर्म का उपशमन करता है । परिणामों की विशुद्धि द्वारा जीव क्षपक श्रेणी में चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय करता है ।

(2) उपशमश्रेणी वाली आत्मा 8 से 11वें गुणस्थानक का स्पर्श करती है । क्षपकश्रेणी में जीव 8 से 12वें (11वें को छोड़कर) गुणस्थानक का स्पर्श करता है ।

(3) उपशम श्रेणी के प्रत्येक गुणठाणे में आत्मा जघन्य से 1 समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त रहती है । क्षपक श्रेणी में प्रत्येक गुणठाणे में जीव जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त रहता है ।

(4) उपशम श्रेणी में आत्मा का अवश्य पतन होता है । क्षपक श्रेणी में आत्मा का ऊर्ध्व आरोहण होता है ।

(5) उपशम श्रेणी में आत्मा औपशमिक अथवा क्षायिक समकिती होती है । क्षपक श्रेणी में आत्मा क्षायिक समकिती होती है ।

(6) उपशमश्रेणी में, क्षपक की अपेक्षा अनंतगुण हीन विशुद्धि होती है । उपशम श्रेणी की अपेक्षा क्षपक श्रेणी में अनंतगुणी विशुद्धि होती है ।

(7) एक भवचक्र में एक जीव को चार बार उपशम श्रेणी प्राप्त हो सकती है । एक भवचक्र में क्षपक श्रेणी एक ही बार प्राप्त होती है ।

(13) वाँ सयोगी गुणस्थानक :-

घातिकर्मों का क्षय होने पर आत्मा 13वें गुणस्थानक में रहती है । केवली भगवंत को पदार्थ को जानने में इन्द्रिय या पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती है, फिर भी वे योग (आत्म-वीर्य) से सहित होते हैं ।

केवली को भी मन-वचन और काया के योग की प्रवृत्ति होती है ।

इस गुणस्थानक का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोनपूर्व करोड़ वर्ष है ।

जो मनुष्य घाति कर्मों का क्षयकर सिर्फ अन्तर्मुहूर्त रहकर ही मोक्ष में चले जाते हैं, वे **अन्तकृत् केवली** कहलाते हैं । वे सयोगी अवस्था में अन्तर्मुहूर्त रहकर अयोगी अवस्था प्राप्तकर मोक्ष में चले जाते हैं ।

केवली भगवंत को मनोयोग का उपयोग किसी को मन से उत्तर देने में करना पड़ता है ।

कोई मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तर देव विमानवासी भगवान को शब्द द्वारा न पूछकर मन द्वारा ही प्रश्न पूछते हैं, तब भगवान भी उनके प्रश्न का उत्तर मन से ही देते हैं ।

मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेव के प्रश्न का जवाब देने के लिए केवली भगवंत मनोद्रव्य को ग्रहणकर उसे प्रश्न के अनुरूप परिणत करते हैं, उस परिणत मनोद्रव्य को देखकर मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेव अपने प्रश्न के उत्तर को अनुमान से जानते हैं, अतः केवली भगवंत को प्रश्न का जवाब देने में मन की जरूरत रहती है ।

देशना देते समय केवली भगवंत वचन योग की और विहार आदि करते समय काययोग की प्रवृत्ति करते हैं अतः वे सयोगी कहलाते हैं ।

सयोगी केवली में कोई तीर्थंकर हो तो धर्मदेशना द्वारा तीर्थ की स्थापना भी करते हैं ।

-: केवली समुद्घात :-

जिन केवली भगवंतों के आयुष्य कर्म की अपेक्षा वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति ज्यादा हो, तो आयुष्य जितनी ही, वेदनीय आदि की स्थिति को रखकर शेष स्थिति का नाश करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं ।

परंतु जिन केवली भगवंतों के चारों अघाति कर्मों की स्थिति एक समान हो उन्हें केवली समुद्घात करने की जरूरत नहीं रहती है ।

केवली समुद्घात में कुल आठ समय लगते हैं ।

पहले समय में केवली भगवंत अपने शरीर में से आत्म प्रदेशों को बाहर निकालकर स्वदेह प्रमाण मोटी और 14 राजलोक प्रमाण लंबी दंडाकृति बनाते हैं ।

दूसरे समय में वह दंड पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण लोक पर्यंत फैलकर कपाट का रूप लेता है ।

तीसरे समय में वह कपाट उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम फैलाकर मथानी की आकृति बनाते हैं ।

ऐसा होने से लोक का अधिकांश भाग केवली के आत्मप्रदेशों से व्याप्त हो जाता है, फिर भी मथानी की आकृति होने से आकाश के कुछ भाग खाली रह जाते हैं ।

चौथे समय में शेष रहे स्थानों में भी केवली के आत्मप्रदेश फैल जाते हैं, जिससे आत्मा संपूर्ण लोकव्यापी बन जाती है ।

उस समय लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर केवली के आत्मप्रदेश हो जाते हैं । एक जीव के आत्मप्रदेश असंख्य हैं, जो लोकाकाश के आकाश प्रदेशों के तुल्य हैं ।

इस प्रक्रिया के बाद पुनः आत्मप्रदेशों का संकोच होने लगता है ।

पाँचवें समय में अंतराल प्रदेश खाली होकर पुनः मथानी बन जाती है । छठे समय में कपाट और सातवें समय में पुनः दंड बन जाता है । आठवें समय में केवल आत्मा अपने मूल रूप में आ जाती है ।

यह क्रिया स्वाभाविक होती है, इसमें कुल आठ ही समय लगते हैं ।

इस समुद्घात की क्रिया में सिर्फ काययोग की प्रवृत्ति होती है, मन और वचन योग की प्रवृत्ति नहीं होती है । उसमें भी पहले आठवें समय में औदारिक काययोग दूसरे छठे-सातवें समय में औदारिक मिश्र काय योग एवं तीसरे, चौथे, पाँचवें समय में कार्मण काय योग होता है ।

यह समुद्घात सामान्य केवली को ही होता है, परंतु तीर्थंकरों को नहीं होता है ।

-: योग निरोध :-

सभी केवली सयोगी अवस्था के अंत में परम निर्जरा में कारणभूत योगनिरोध करते हैं ।

सर्व प्रथम बादर काययोग से बादर मनोयोग और बादर वचनयोग को रोकते हैं । उसके बाद सूक्ष्म काययोग से बादर काययोग को रोकते हैं ।

फिर सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्म वचन योग को रोकते हैं ।

अंत में सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्ल ध्यान द्वारा सूक्ष्म काययोग को रोक देते हैं !

योगनिरोध से शाता वेदनीय का बंध रुक जाता है ।

शुक्ल लेश्या का अभाव होने से जीव अलेशी बन जाता है ।

आत्मप्रदेश मेरु की तरह स्थिर हो जाते हैं ।

भवोपग्राही कर्मों का नाश हो जाता है ।

(14) वाँ अयोगी गुणस्थानक :-

सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नाम के शुक्ल ध्यान के बल से केवली भगवंत अपने शरीर के एक तृतीयांश भाग में आत्मप्रदेशों को खींचकर शरीर के दो तृतीयांश भाग में स्थिर हो जाते हैं । इस कारण मोक्ष में सिद्धों की अवगाहना दो तृतीयांश भाग जितनी होती है ।

सयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में योग का अभाव हो जाता है ।

मन, वचन, काया के योगों का अभाव होने से 14वें गुणस्थानक को अयोगी गुणस्थानक कहते हैं ।

अयोगी गुणस्थानक में आत्मा `समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति' नाम के शुक्ल ध्यान से युक्त होकर सभी कर्मों के नाश के लिए शैलेशीकरण करती है ।

शैलेश-मेरु पर्वत

करण-क्रिया

यहाँ योग का अभाव होने से आत्मप्रदेश मेरु की तरह स्थिर हो जाते हैं । उसमें वेदनीय आदि कर्मों की असंख्यात गुणाकार से निर्जरा होती है, उसे शैलेशीकरण कहते हैं ।

इसका काल पाँच ह्रस्वाक्षर `अ इ उ ऋ लृ' के उच्चारण जितना है ।

अघाती कर्मों का संपूर्ण क्षय हो जाने से आत्मा में अक्षयसुख अक्षय स्थिति, अरूपीपना तथा अगुरुलघु गुण पैदा होता है । उसके बाद आत्मा अशरीरी-अमूर्त होकर एक ही समय में सिद्धशिला में पहुँच जाती है ।

लोक के अंत भाग में जाकर सिद्ध भगवंत स्थिर हो जाते हैं, वहाँ उनकी अवगाहना $\frac{2}{3}$ भाग जितनी होती है ।

वे अनंत काल तक निजगुण-रमणता के परम आनंद का अनुभव करते हैं ।

लोकांत के आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से सिद्ध भगवंत आगे गति नहीं करते हैं ।

गुणस्थानकों का जघन्य-उत्कृष्ट काल :-

1 मिथ्यात्व गुणस्थानक :- अभव्य की अपेक्षा अनादि अनंत, भव्य की अपेक्षा अनादि-सांत है ।

सम्यक्त्व से पतित की अपेक्षा सादिसांत है, अर्थात् गुणस्थानक का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तकाल है ।

2 सास्वादन गुणस्थानक :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छह आवलिका ।

3 मिश्र गुणस्थानक :- जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त ।

4 अविरत सम्यग्दृष्टि :- जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक 33 सागरोपम है ।

5 देशविरति :- जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

6 प्रमत्त :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त ।

7 अप्रमत्त :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त । छठे-सातवें गुणस्थानक को जोड़ने पर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

8-9-10-11 :- उपशम श्रेणी में अपूर्व करण आदि का जघन्य काल एक समय व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

8-9-10-12 :- क्षपक श्रेणी में जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

13 **सयोगी :-** जघन्य से अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

14 **अयोगी :-** पाँच ह्रस्वाक्षर उच्चारण मात्र ।

भवचक्र में गुणस्थानकों की प्राप्ति :-

एक जीव को भवचक्र में–

मिथ्यात्व गुणस्थानक -असंख्य बार

सास्वादन गुणस्थानक-5 बार

3-4-5वाँ गुणस्थानक-असंख्य बार

छठा-सातवाँ गुणस्थानक-दो हजार से 9 हजार बार

8-9-10वाँ गुणस्थानक-उपशम में चढ़ते चार बार, उतरते चार बार और क्षपक श्रेणी में 1 बार, इस प्रकार कुल नौ बार प्राप्त होता है ।

उपशांत मोह-चार बार

12-13-14वाँ गुणस्थानक-एक बार प्राप्त होता है ।

बंध-विधि

शुभ-अशुभ अध्यवसायों के द्वारा आत्मा कर्म का बंध करती है । कर्म के बंध द्वारा आत्मा अनंतानंत कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है, उसी समय चार वस्तुओं का निर्णय होता है- (1) प्रकृति (स्वभाव) (2) स्थिति (काल) (3) रस (शुभ-अशुभ फल देने की तीव्रता या मंदता) (4) प्रदेश (कर्म दलिकों का प्रमाण)

आत्मा जो स्थितिबंध करती है, उसके दो विभाग होते हैं–

(1) **अयोग्य स्थिति (अबाधा काल) :-** आत्मा जिस स्थिति वाले कर्मों का बंध करती है, तथा स्वभाव से ही कुछ समय तक कर्मदलिकों की रचना नहीं होती है, उसे अयोग्य स्थिति अर्थात् **अबाधा** काल कहते हैं ।

(2) **योग्य स्थिति (निषेक काल) :-** जिस समय कर्म की स्थिति का बंध होता है, उसमें अबाधा काल की स्थिति को छोड़ योग्य काल में कर्म दलिकों की रचना हो जाती है । उसे योग्य स्थिति या निषेक स्थिति कहते हैं ।

उदा. मोहनीय कर्म की 70 कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति का बंध किया तो वह स्थिति दो भाग में बँट जाएगी-

(1) 7000 वर्ष की स्थिति - अयोग्य स्थिति (आबाधा काल)

(2) 7000 वर्षन्यून 70 कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति (योग्य स्थिति) ।

3 बंध-विधान

अभिनव कम्मगहणं, बंधो ओहेण तत्थ वीस सयं ।
तित्थयराहारग दुग-वज्जं मिच्छंमि सतर सयं ।।3।।

शब्दार्थ :-

अभिनव=नवीन
कम्मग्गहणं=कर्मग्रहण
बंधो=बंध
ओहेण=ओघ से
तत्थ=वहाँ
वीससयं=120
तित्थयर=तीर्थंकर
आहारग=आहारक

दुग=दो	**मिच्छंमि**=मिथ्यात्व में
वज्जं=छोड़कर	**सतरसयं**=117

भावार्थ :- नए कर्मों को ग्रहण करना, उसे बंध कहते हैं। सामान्य से अर्थात् किसी जीवस्थान गुणस्थानक की विवक्षा किए बिना बंध योग्य 120 कर्म प्रकृतियाँ हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में नामकर्म और आहारक-द्विक को छोडकर 117 कर्म प्रकृतियों का बंध होता है।

विवेचन :- इस संसार में जहाँ आत्मा रही हुई है, उसके चारों ओर अनंत-अनंत कार्मण वर्गणाएँ भी रही हुई है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप हेतुओं से आत्मा कर्मबंध करती रहती है।

मिथ्यात्व आदि हेतुओं से आत्मा जिन नवीन कर्मों को ग्रहण करती है, उसे `बंध' कहते हैं।

सामान्य से कर्मबंध की 120 प्रकृतियाँ हैं- जो इस प्रकार हैं–

ज्ञानावरणीय	की	5	प्रकृति
दर्शनावरणीय	की	9	प्रकृति
वेदनीय	की	2	प्रकृति
मोहनीय	की	26	प्रकृति
आयुष्य	की	4	प्रकृति
नाम	की	67	प्रकृति
गोत्र	की	2	प्रकृति
अंतराय	की	5	प्रकृति
इस प्रकार	कुल	120	प्रकृतियाँ होती हैं।

यद्यपि नाम कर्म के 67 की तरह 103 भेद भी होते हैं। सत्ता में नाम कर्म के 103 भेद बताकर 158 प्रकृतियाँ मानी गई हैं। परंतु बंध में नाम कर्म के 67 भेद की ही विवक्षा होने से बंध योग्य कुल प्रकृतियाँ 120 मानी गई है।

अब गुणस्थानक की अपेक्षा बंध योग्य प्रकृति बताते है।

मिथ्यात्व नाम के पहले गुणस्थानक में 117 कर्म प्रकृतियों का बंध होता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में रहा एक ही जीव 117 प्रकृतियाँ बाँध देता हो, ऐसा नहीं है बल्कि अनेक जीवों की अपेक्षा इस गुणस्थानक में अधिकतम 117 प्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक (आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग नाम कर्म) इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यक्त्व की उपस्थिति में ही होता है तथा आहारक द्विक का बंघ अप्रमत्तादि गुणस्थानक में ही होता है ।

अबंध और बंध विच्छेद में अंतर :-

जिस गुणस्थानक में जिस कर्म प्रकृत्ति का **अबंध** कहा हो, उस प्रकृति का उस गुणस्थान में बंध नहीं होता है, परंतु उसके आगे के गुणस्थानकों में बंध हो सकता है ।

जिस प्रकृति का **'बंध विच्छेद'** कहा हो, उस प्रकृति का उस गुणस्थानक या उसके आगे के गुणस्थानक में भी बंध नहीं होता है ।

नरयतिग जाइ थावर, चउ हुंडायव छिवट्ठ नपुमिच्छं ।
सोलंतो इगहियसय, सासणि तिरि थीण दुहुगतिगं ।।4।।
अण मज्झागिइ संघयण, चउनिउज्जोय कुखगइत्थित्ति ।
पणवीसंतो मीसे चउसयरि दुआउ अ अबंधा ।।5।।

शब्दार्थ :-

नरयतिग=नरक त्रिक
जाइ=जाति
थावरचउ=स्थावर चतुष्क
हुंडायव=हुंडक संस्थान-आतप
छिवट्ठ=सेवार्त
नपु=नपुंसक वेद
मिच्छं=मिथ्यात्व
सोलंतो=सोलह का अंत
इगहियसय=एक सौ एक
सासणि=सास्वादन में
तिरि=तिर्यंच
थीण=थिणद्धि
दुहुगतिगं=दौर्भाग्य त्रिक
अण=अनंतानुबंधी

मज्झागिइ=मध्य के संस्थान	**पणवीसंतो=**पच्चीस
संघयण=मध्य के संघयण	**मीसे=**मिश्र गुणस्थानक में
चउ=चतुष्क	**चउसयरि=**एक सौ चार
निउज्जोअ=नीच गोत्र, उद्योत	**दुआउ=**दो आयुष्य
कुखगइ=अशुभ विहायोगति	**अ=**तथा
त्थित्ति=स्त्रीवेद	**अबंधा=**अबंध है

भावार्थ :- नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंडक संस्थान, आतप, सेवार्त संघयण, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय इन 16 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से सास्वादन गुणस्थानक में 101 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तिर्यंच त्रिक, थीणद्धि त्रिक, दौर्भाग्य त्रिक, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्य संघयण और मध्य संस्थान, नीच गोत्र, उद्योत, अशुभविहायोगति और स्त्रीवेद इन 25 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से मिश्र गुणस्थानक में 74 कर्म- प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ दो आयुष्य का अबंध है ।

विवेचन :- मिथ्यात्व के अंत में बंध विच्छेद होने वाली 16 प्रकृतियों का नाम निर्देश किया है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में-

नरकत्रिक अर्थात् 1 नरकगति 2 नरकानुपूर्वी और 3 नरक आयुष्य **जाति चतुष्क** अर्थात् 4 एकेन्द्रियजाति 5 बेइन्द्रियजाति 6 तेइन्द्रियजाति और 7 चउरिन्द्रिय जाति, **स्थावर चतुष्क** अर्थात् 8 स्थावर 9 सूक्ष्म 10 अपर्याप्त और 11 साधारण 12 हुंडक 13 आतप 14 सेवार्त संघयण 15 नपुंसकवेद और 16 मिथ्यात्व इन 16 प्रकृतियों के बंध का अंत आ जाता है ।

अर्थात् मिथ्यात्व के कारण ही इन प्रकृतियों का बंध होता है । दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व का अभाव होने से इन 16 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

117 में से 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने से **सास्वादन गुणस्थानक** में 101 कर्म प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

मिश्र गुणस्थानक

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में 25 कर्म प्रकृतियों के बंध का उच्छेद होता है–

तिर्यंच त्रिक अर्थात् 1 तिर्यंच गति 2 तिर्यंचानुपूर्वी 3 तिर्यंच आयुष्य । **थीणद्धि त्रिक** अर्थात् 4 थीणद्धि निद्रा 5 निद्रा निद्रा 6 प्रचला-प्रचला,

दौर्भाग्य त्रिक अर्थात् 7 दौर्भाग्य 8 दुस्वर और 9 अनादेय

अनंतानुबंधी चतुष्क अर्थात् 10 अनंतानुबंधी क्रोध 11 अनंतानुबंधी मान 12 अनंतानुबंधी माया और 13 अनंतानुबंधी लोभ मध्यम संस्थान अर्थात् पहले और अंतिम संस्थान को छोड़कर बीच के चार संस्थान 14 न्यग्रोध परिमंडल 15 सादि 16 वामन 17 कुब्ज । **मध्यम संघयण** अर्थात् पहले और अंतिम संघयण को छोड़कर बीच के चार संघयण ।

18 ऋषभ नाराच 19 नाराच 20 अर्ध नाराच 21 कीलिका संघयण

22 नीचगोत्र 23 उद्योत 24 अशुभ विहायोगति और 25 स्त्रीवेद ।

तिर्यंचत्रिक आदि 25 कर्म प्रकृतियों का बंध अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर ही होता है । अनंतानुबंधी का उदय पहले व दूसरे गुणस्थानक तक ही है । तीसरे आदि गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी का उदय नहीं है, अतः इन प्रकृतियों का आगे के गुणस्थानकों में बंध नहीं होता है ।

अतः 101 में से 25 घटाने पर 76 प्रकृतियाँ रहती हैं, परंतु मिश्र गुणस्थानक में न तो किसी जीव का मरण होता है और न ही परभव संबंधी आयुष्य का बंध होता है ।

चार प्रकार के आयुष्य में से नरक और तिर्यंच के आयुष्य का बंध पहले दो गुणस्थानक तक ही होता है । देव व मनुष्य के आयुष्य का भी इस गुणस्थानक में अबंध होने से 76 में 2 कम करने पर 74 प्रकृतियों का बंध इस मिश्र गुणस्थानक में होता है ।

मिश्र गुणस्थानक में कर्म बंध

ज्ञानावरणीय	की	5
दर्शनावरणीय	की	6
वेदनीय	की	2
मोहनीय	की	19
नाम	की	36
गोत्र	की	1
अंतराय	की	5
		74

उतार-चढ़ाव के परिणाम को `घोलना' के परिणाम कहते हैं, उसी में आयुष्य का बंध होता है ।

मिश्र गुणस्थानक में घोलना' के परिणाम का अभाव होने से मिश्र गुणस्थानक में आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

सम्मे सगसयरि जिणाउबंधि वइर नर तिय बिय कसाया ।
उरल दुगंतो देसे सत्तट्ठी तिय कसायंतो ।।6।।
तेवट्ठि पमत्ते सोग अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं ।
वुच्छिज्ज छच्च सत्ते व नेइ सुराउ जया निट्ठं ।।7।।

शब्दार्थ :-

सम्मे=सम्यक्त्व
सगसयरि=सितत्तर
जिणाउ=तीर्थंकरनाम, आयुद्वय
बंधि=बंध
वइर=वज्रऋषभनाराच संघयण
नरतिय=मनुष्यत्रिक
बियकसाया=अप्रत्याख्यानीय कषाय चतुष्क
उरलदुग=औदारिक द्विक
अंतोदेसे=देशविरति के अंत में
सत्तट्ठी=सड़सठ
तियकसायंतो=प्रत्याख्यानीय कषाय का अंत
तेवट्ठि=तिरेसठ
पमत्ते=प्रमत्त गुणस्थानक में
सोग=शोक
अरइ=अरति
अथिरदुग=अस्थिर द्विक
अजस=अपयश
अस्सायं=अशाता वेदनीय
वुच्छिज्ज=विच्छेद
छच्च=छह
सत्त=सात
व=अथवा
नेइ=ले जाता है
सुराउ=देव आयुष्य
जया=जब
निट्ठं=समाप्त

भावार्थ :- अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और दो आयुष्य का बंध होने से 77 प्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

वज्रऋषभ नाराच, मनुष्यत्रिक अप्रत्याख्यानावरण कषाय तथा औदारिक द्विक का अंत होने से देशविरति गुणस्थानक में 67 कर्म प्रकृति का बंध होता है ।

पाँचवें गुणस्थानक के अंत में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंध विच्छेद होने से छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानक में 63 प्रकृतियाँ बंध योग्य हैं ।

छठे गुणस्थानक के अंत में शोक, अरति, अस्थिर द्विक, अपयश और अशाता वेदनीय इन छह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है अथवा देव आयुष्य के बंध का विच्छेद करे तो सात कर्म प्रकृति का बंधविच्छेद होता है ।

विवेचन :- सम्यक्त्व गुणस्थानक में 77 कर्म प्रकृति का बंध ।

चौथे गुणस्थानक में सम्यक्त्व की उपस्थिति होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है । घोलना परिणाम का सद्भाव होने से सम्यग्दृष्टि मनुष्य और सम्यग्दृष्टि तिर्यंच, देव आयुष्य का बंध करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि देव और नारक मनुष्य आयुष्य का बंध करते है ।

77 प्रकृतियाँ

ज्ञानावरणीय	की	5
दर्शनावरणीय	की	6
वेदनीय	की	2
मोहनीय	की	19
आयुष्य	की	2
नाम कर्म	की	37
गोत्र कर्म	की	1
अंतराय	की	5
		77

10 का बंध विच्छेद :-

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक के अंत में–

1 वज्र ऋषभ नाराच संघयण
2 मनुष्य गति
3 मनुष्यानुपूर्वी
4 मनुष्य आयुष्य

5 अप्रत्याख्यानीय क्रोध

6 मान

7 माया

8 लोभ

9 औदारिक शरीर और

10 औदारिक अंगोपांग

इन 10 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है ।

पाँचवें आदि गुणस्थानकों में मनुष्य भव योग्य कर्म प्रकृतियों का बंध न होकर देव भव योग्य प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और मनुष्य आयुष्य सिर्फ मनुष्यभव में ही उदय में आता है । इसी तरह वज्रऋषभनाराच संघयण, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग- ये तीन प्रकृतियाँ भी मनुष्य-तिर्यंच भव में ही भोगने योग्य होने से पाँचवें आदि गुणस्थानकों में उनका बंध नहीं होता है ।

जिस गुणस्थानक में जिस कषाय का उदय हो, उसी गुणस्थानक तक उस कषाय का बंध हो सकता है ।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय चौथे गुणस्थानक के अंतिम समय तक हो सकता है, पाँचवें गुणस्थानक में इस कषाय का उदय नहीं होता है ।

देशविरति गुणस्थानक में मनुष्य भव के योग्य कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, अतः औदारिक शरीर आदि तीन प्रकृतियों का भी बंध नहीं होता है ।

पाँचवें देशविरति गुणस्थानक में 67 का बंध

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	15
आयुष्य	1
नाम कर्म	32
गोत्र	1
अंतराय	5
	67

देशविरति के अंत में 4 का बंध विच्छेद पाँचवें गुणस्थानक तक प्रत्याख्यानीय कषाय का उदय होता है, उसके आगे नहीं । अतः उसका बंध भी पाँचवें गुणस्थानक तक ही होता है ।

छठे गुणस्थानक में 4 प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया और लोभ का बंधविच्छेद हो जाने से वहाँ 63 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

छठे गुणस्थानक में 63 का बंध

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	11
आयुष्य	1
नाम	32
गोत्र	1
अंतराय	5
	63

छठे प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में 6 या 7 का बंधविच्छेद :-

शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश और अशातावेदनीय इन छह प्रकृतियों का बंध प्रमाद दशा में ही होता है । छठे गुणस्थानक के अंत में प्रमाद दशा का नाश हो जाने से शोक आदि के बंध का विच्छेद हो जाता है ।

6 या 7 का विकल्प

कोई जीव छठे गुणस्थानक में देव आयुष्य के बंध का प्रारंभ कर जीव विशुद्धि द्वारा 7वें गुणस्थानक में चला जाता है और वहाँ जाकर देवायु का बंध पूरा करता है । उस जीव की अपेक्षा से देवायु के बंध का विच्छेद सातवें गुणस्थानक में होता है ।

जो जीव छठे गुणस्थानक में ही देवायु के बंध का प्रारंभ कर उसी गुणस्थानक में देवायु का बंध पूरा कर देता है, उस जीव की अपेक्षा देवायु का विच्छेद छठे गुणस्थानक में हो जाता है ।

इस प्रकार छठे के अंत में 6 या 7 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है ।

4 अप्रमत्त में बंध

गुणसट्ठि अपमत्ते सुराउ बंधंतु जइ इहागच्छे ।
अन्नह अट्ठावन्ना जं आहारगदुगं बंधे ।।8।।

शब्दार्थ :-

गुणसट्ठि=उनसाठ	**अन्नह**=अन्यथा
अपमत्ते=अप्रमत्त गुणस्थानक में	**अट्ठावन्ना**=58
सुराउ=देव आयुष्य	**जं**=यदि
बंधंतु=बाँधता हुआ	**आहारगदुगं**=आहारक द्विक
जइ=यदि	**बंधे**=बाँधता है
इह=यहाँ	
आगच्छे=आए	

भावार्थ :- यदि देव आयुष्य का बंध करते हुए कोई जीव अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करता है तो 59 प्रकृतियों का बंध होता है, अन्यथा 58 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि यहाँ आहारक द्विक का बंध होता है ।

विवेचन :-

7वें अप्रमत्त गुणस्थानक में 58 या 59 का बंध

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	1
मोहनीय	9
नाम	31
गोत्र	1
अंतराय	5
	58

जो जीव प्रमत्त गुणस्थानक में देवायु का बंध प्रारंभ कर वहीं पर देवायु का बंध पूरा कर देता है, उस जीव की अपेक्षा 63-7=56 प्रकृति में आहारक द्विक को जोड़ने से 58 प्रकृति का बंध होता हैं ।

59 का बंध

जो जीव छठे गुणस्थानक में देवायु के बंध का प्रारंभ कर सातवें में देवायु का बंध पूरा करता है, वह अरति आदि छह का बंध नहीं करने से 63-6=57 प्रकृतियाँ रहती हैं, उसके आहारक द्विक को जोड़ने से 57+2=59 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अडवन्न अपुव्वाइम्मि निद्ददुगंतो छप्पन्न पणभागे ।
सुरदुग पणिंदि सुख गइ तस नव उरल विणुतणुवंगा ।।9।।
समचउर निमिण जिण वन्न अगुरुलहु चउ छलंसि तीसंतो ।
चरमे छवीस बंधो हास रई कुच्छ भयभेओ ।।10।।

शब्दार्थ :-

अडवन्न=अट्ठावन
अपुव्वाइम्मि=अपूर्वकरण के प्रथम भाग में
निद्ददुग=निद्रा द्विक
अंतो=अंत
छप्पन्न=छप्पन
पणभागे=पाँच भाग में
सुर दुग=देव द्विक
पणिंदि=पंचेन्द्रिय
सुखगइ=शुभविहायोगति
तस नव=त्रस आदि नौ
उरल=औदारिक
विणु=बिना
तणुवंगा=शरीर-उपांग
समचउर=समचतुरस्त्र
निमिण=निर्माण
जिण=तीर्थंकर नाम कर्म
वन्न=वर्ण
अगुरुलहु=अगुरुलघु
चउ=चार
छलंसि=छठे भाग में
तीसंतो=तीस का अंत
चरमे=अंत में
छवीस=छब्बीस
बंधो=बंध
हास=हास्य
रई =रति
कुच्छ=कुत्सा
भय=भय
भेओ=अंत

भावार्थ :- अपूर्वकरण गुणस्थानक के पहले भाग में 58 प्रकृतियों का बंध होता है। वहाँ निद्राद्विक का अंत होता है। अर्थात् दूसरे से छठे भाग तक के 5 भाग में 56 प्रकृतियों का बंध होता है।

छठे भाग के अंत में सुरद्विक, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ विहायोगति, त्रस आदि 9, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग सिवाय के शरीर और अंगोपांग, समचतुरस्त्र संस्थान, निर्माण, जिननाम, वर्ण आदि चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क- इन 30 प्रकृतियों का बंध विच्छेद होता है अर्थात् अंतिम भाग में 26 कर्म-प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ हास्य, रति, जुगुप्सा और भय के बंध का विच्छेद होता है।

विवेचन :-

अपूर्वकरण- आठवें गुणस्थानक के 7 भाग हैं।

उसमें पहले भाग में 58 कर्मप्रकृतियों का बंध होता है-

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	1
मोहनीय	9
नाम	31
गोत्र	1
अंतराय	5
	58

अपूर्वकरण के पहले भाग के अंत में 2 प्रकृति का उच्छेद होता है- वे हैं- निद्राद्विक- अर्थात् निद्रा और प्रचला।

अपूर्वकरण के 2 से 6 भाग में 56 का बंध होता है। छठे भाग के अंत में 30 का बंध विच्छेद होता है-

1. देवगति	2. देवानुपूर्वी	3. पंचेन्द्रिय जाति	4. शुभ विहायोगति
5. त्रस	6. बादर	7. पर्याप्ता	8. प्रत्येक
9. स्थिर	10. शुभ	11. सुभग	12. सुस्वर
13. आदेय	14. वैक्रियशरीर	15. वैक्रिय अंगोपांग	16. आहारक शरीर
17. आहारक अंगोपांग		18. तैजस शरीर	19. कार्मण शरीर
20. समचतुरस्त्र संस्थान		21. निर्माण	22. जिन नाम

23. वर्ण 24. गंध 25. रस 26. स्पर्श
27. अगुरूलघु 28. उपघात 29. पराघात और 30. उच्छ्वास ।

इन 30 प्रकृतियों का बंध देवगति के साथ होता है, अतः देवगति प्रायोग्य कहलाती है ।

आठवें गुणस्थानक के छठे भाग में 30 कर्मप्रकृति के बंध का विच्छेद होने से सातवें भाग में सिर्फ 26 प्रकृतियों का ही बंध होता है-

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	4
वेदनीय	1
मोहनीय	9
नाम	1
गोत्र	1
अंतराय	5
	26

बंध विच्छेद

आठवें गुणस्थानक के अंत में हास्य ,रति ,भय और जुगुप्सा- इन चार प्रकृतियों का भी बंध विच्छेद हो जाता है ।

5 नौवें गुणस्थानक में बंध और बंध विच्छेद

अनियट्टि भाग पणगे, इगेग हीणो दुवीसविह बंधो ।
पुम संजलण चउण्हं, कमेण छेओ सतर सुहुमे ।।11।।

शब्दार्थ :-

अनियट्टि=अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में
भागपणगे=पाँच भाग में
इगेगहीणो=एक-एक हीन
दुवीसविह=बाईस प्रकार
बंधो=बंध
पुम=पुरुषवेद
संजलण=संज्वलन
चउण्हं=चतुष्क
कमेण=क्रमशः
छेओ=छेद
सतर=सत्रह
सुहुमे=सूक्ष्मसंपराय में

भावार्थ :- अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के 5 भाग करें (1) उसके पहले भाग में 22 प्रकृति का बंध होता है, फिर पुरुषवेद और संज्वलन चतुष्क इन पाँच में से एक-एक का क्रमशः बंध-विच्छेद होता है अर्थात् सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 17 प्रकृति का बंध होता है ।

विवेचन :- अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के 5 भाग करने चाहिए । उसके पहले भाग में-

ज्ञानावरणीय-	5
दर्शनावरणीय-	4
वेदनीय-	1
मोहनीय-	5
नाम-	1
गोत्र-	1
अंतराय-	5
	22

इन 22 प्रकृतियों का बंध होता है ।

दूसरे भाग में 21 का बंध

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के पहले भाग के अंत में पुरुषवेद का उच्छेद हो जाने से 22-1=21 का ही बंध होता है ।

तीसरे भाग में 20 का बंध-

दूसरे भाग के अंत में संज्वलन क्रोध के बंध का उच्छेद होने से 20 का ही बंध होता है ।

ज्ञानावरणीय-	5
दर्शनावरणीय-	4
वेदनीय-	1
मोहनीय-	3
नाम-	1
गोत्र-	1
अंतराय-	5
	20

चौथे भाग में 19 का बंध

तीसरे भाग के अंत में संज्वलन मान के बंध का विच्छेद होने से 19 का ही बंध होता है ।

पाँचवें भाग में 18 का बंध-

अनिवृत्ति गुणस्थानक के चौथे भाग के अंत में संज्वलन माया के बंध का उच्छेद हो जाने से पाँचवें भाग में **18** प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

10वें गुणस्थानक में 17 का बंध

नौवें गुणस्थानक के अंत में संज्वलन लोभ का विच्छेद होने से **10**वें गुणस्थानक में **17** प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	4
वेदनीय	1
नाम	1
गोत्र	1
अंतराय	5
	17

चउ दंसणुच्च जस नाण- विग्घ दसगं ति सोलसुच्छेओ ।
तिसु सायबंध छेओ, सजोगि बंधं तु णंतो अ ।।12।।

शब्दार्थ :-

चउ=चार	**उच्छेओ**=उच्छेद
दंसण=दर्शनावरणीय	**तिसु**=तीनं में
उच्च=ऊंचगोत्र	**सायबंध**=शाता का बंध
जस=यश	**छेओ**=विच्छेद
नाण=ज्ञानावरणीय	**सजोगि**=सयोगी गुणस्थानक में
विग्घ=अंतराय	**बंध**=बंध
दसगं=दश	**णंतो**=अंत नहीं
सोलस=सोलह	

भावार्थ :- दर्शनावरणीय की 4, उच्च गोत्र, यश, ज्ञानावरणीय की 5 और अंतराय की 5, इन सोलह प्रकृतियों का 10वें गुणस्थानक के अंत में बंधविच्छेद होता है अर्थात् 11-12 व 13वें गुणस्थानक में सिर्फ शातावेदनीय का ही बंध होता है ।

सयोगी गुणस्थानक के अंत में शातावेदनीय का भी बंध उच्छेद हो जाता है ।

इस प्रकार बंध के हेतुओं का अभाव होने से बंध का अंत आ जाता है ।

विवेचन :-

10वें गुणस्थानक के अंत में 16 का बंध उच्छेद :-

1. चक्षु दर्शनावरणीय	2. अचक्षु दर्शनावरणीय
3. अवधि दर्शनावरणीय	4. केवल दर्शनावरणीय
5. उच्च गोत्र	6. यशःकीर्ति
7. मतिज्ञानावरणीय	8. श्रुतज्ञानावरणीय
9. अवधिज्ञानावरणीय	10. मनःपर्यवज्ञानावरणीय
11. केवलज्ञानावरणीय	12. दानान्तराय
13. लाभांतराय	14. भोगांतराय
15. उपभोगांतराय	16. वीर्यांतराय

इन 16 प्रकृतियों के बंध का कारण कषाय का उदय है । 10वें गुणस्थानक के अंत में कषाय का अभाव हो जाने से इन प्रकृतियों के बंध का भी अभाव हो जाता है ।

11, 12 व 13वें गुणस्थानक में एक का बंध

उपशांत मोह, क्षीण मोह और सयोगी गुणस्थानक में एक मात्र योग जन्य शातावेदनीय कर्म का बंध होता है ।

कषाय के अभाव में मात्र योग से प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता है । प्रथम समय में शातावेदनीय का बंध होता है, दूसरे समय में वह कर्म उदय में आता है और तीसरे समय में वह कर्म क्षीण हो जाता है ।

13वें के अंत में 1 का भी बंध विच्छेद

13वें गुणस्थानक में जब अन्तर्मुहूर्त जितना आयुष्य बाकी हो तब योगनिरोध करते हैं । योग का निरोध हो जाने से योगजन्य शातावेदनीय के बंध का भी विच्छेद हो जाता है ।

अयोगी- अबंधक

अयोगी गुणस्थानक में किसी भी प्रकार के कर्म का बंध नहीं होता है, अतः उन्हें अबंधक कहा है ।

6

उदय विधि

उदओ विवाग वेअणमुदीरणमपत्ति इह दुवीससयं ।
सतरसयं मिच्छे मीस सम्म आहार जिणणुदया ।।13।।

शब्दार्थ :-

उदओ=उदय	**सतरसयं**=117
विवागवेअण=विपाक का वेदन	**मिच्छे**=मिथ्यात्व में
उदीरणं=उदीरणा	**मीस**=मिश्र मोहनीय
अपत्ति=अप्राप्त	**सम्म**=सम्यक्त्व मोहनीय
इह=यहाँ	**आहार**=आहारक
दुवीस सयं=122	**जिण**=जिननामकर्म
	अणुदया=उदय नहीं होने से

भावार्थ :- कर्म के फल का अनुभव करना, उसे उदय कहते हैं । उदय काल को प्राप्त नहीं हुए कर्मदलिकों को प्रयत्नपूर्वक उदय में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

उदय और उदीरणा में कुल 122 प्रकृतियाँ हैं । मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय, समकित मोहनीय, आहारक द्विक और जिननामकर्म- इन 5 प्रकृतियों का उदय नहीं होने से 117 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

विवेचन :- कर्म के बंध और उदय में अंतर है । पाप प्रकृतियों का बंध तो व्यक्ति मजे से करता है । पाप करते-करते भी आनंद आता है, परंतु पाप का उदय बहुत ही भयंकर होता है ।

पुण्य बाँधते समय थोड़ा कष्ट पडता है, परंतु पुण्य का उदय सुखदायी होता है । कर्मबंध के बाद जब तक आबाधाकाल पूर्ण नहीं होता है, तब तक कर्म उदय में नहीं आता है ।

बंध योग्य 120 प्रकृतियाँ हैं, जबकि उदय योग्य 122 प्रकृतियाँ हैं, इसका कारण यह है, कि मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय का स्वतंत्र रूप

से बंध नहीं होता है । परंतु मिथ्यात्व मोहनीय के ही कर्मदलिक शुद्ध और अर्ध शुद्ध होने पर समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय में बदल जाते हैं । इन दो प्रकृतियों की वृद्धि हो जाने से उदय में 122 प्रकृतियाँ हो जाती हैं ।

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	28
आयुष्य	4
नाम	67
गोत्र	2
अंतराय	5
	122

मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 का उदय

मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्र मोहनीय तथा समकित मोहनीय, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग तथा तीर्थंकर नाम कर्म का उदय नहीं होता है, क्योंकि मिश्र मोहनीय का उदय सिर्फ मिश्र गुणस्थानक में ही होता है । सम्यक्त्व मोहनीय का उदय क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को ही होता है, अतः उसका उदय चौथे से सातवें गुणस्थानक तक होता है ।

आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय प्रमत्त गुणस्थानक में ही होता है, उसके सिवाय के गुणस्थानक में आहारक द्विक का उदय नहीं होता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म का उदय 13 और 14वें गुणस्थानक में होता है, अतः इन पाँच प्रकृतियों के उदय का अभाव होने से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

अनुदय और उदयविच्छेद :-

जिस गुणस्थानक में जिस प्रकृति का अनुदय कहा हो उस गुणस्थानक में उस प्रकृति का उदय नहीं होता है परंतु आगे के गुणस्थानकों में उस प्रकृति का उदय हो सकता है, परंतु जिस प्रकृति का जिस गुणस्थानक में उदय विच्छेद कहा हो, उस प्रकृति का उसके आगे के गुणस्थानक में उदय नहीं होता है ।

सुहुम तिगायव मिच्छं मिच्छत्तं सासणे इगारसयं ।
निरयाणु पुव्विणुदया, अण थावर इग विगलअंतो ।।14।।

शब्दार्थ :-

सुहुमतिग=सूक्ष्मत्रिक	**निरयाणु पुव्वि**=नरकानुपूर्वी
आयव=आतप	**अणुदया**=अनुदय
मिच्छं=मिथ्यात्व	**अण**=अनंतानुबंधी
मिच्छत्तं=मिथ्यात्व	**थावर**=स्थावर
सासणे=सास्वादन में	**इग**=एकेन्द्रिय
इगार सयं=एक सौ ग्यारह	**विगलअंतो**=विकलेन्द्रिय का अंत

भावार्थ :- मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्मत्रिक, आतप और मिथ्यात्व मोहनीय का उच्छेद होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का अनुदय होने से 111 प्रकृति का उदय होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी चतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति और विकलेन्द्रिय जाति के उदय का विच्छेद होता है ।

विवेचन :- मिथ्यात्व के अंत में 5 का उच्छेद-मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतप और मिथ्यात्व मोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है । आगे के गुणस्थानकों में इनका उदय नहीं होता है ।

सूक्ष्म नामकर्म का उदय सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को होता है । अपर्याप्ता नाम कर्म का उदय लब्धि अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीवों को होता है और साधारण नाम कर्म का उदय साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को होता है- वे जीव सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त नहीं करते हैं ।

उपशम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता जीव ही सास्वादन गुणस्थानक को प्राप्त करते हैं । वे जीव सास्वादन गुणस्थानक में मरण पाएँ तो लब्धि पर्याप्ता नाम कर्म के उदयवाले पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति और विकलेन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं परंतु सूक्ष्म एकेन्द्रिय, लब्धि अपर्याप्ता एकेन्द्रिय आदि या साधारण वनस्पति में उत्पन्न नहीं होते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में आतप नाम कर्म का भी उच्छेद हो जाता है, क्योंकि इस नाम कर्म का उदय सूर्यविमान के नीचे रहे मणिरत्नों में बादर पृथ्वीकाय के जीवों को शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर आतप नाम कर्म का उदय होता है- उस समय सास्वादन गुणस्थानक नहीं होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में रहा जीव मरकर नरक गति में भी नहीं जाता है, अतः सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का भी उदय नहीं होता है ।

इस प्रकार पहले गुणस्थानक में उदययोग छह प्रकृतियों को कम करने पर दूसरे गुणस्थानक में 111 प्रकृतियों का उदय माना गया है ।

सास्वादन में 111 का उदय

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	25
आयुष्य	4
नाम	59
गोत्र	2
अंतराय	5
	111

सास्वादन के अंत में 9 का उच्छेद

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, स्थावर, एकेन्द्रियजाति, बेइन्द्रिय जाति, तेइन्द्रिय जाति, चउरिन्द्रिय जाति- इन 9 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद हो जाता है ।

अनंतानुबंधी का उदय सम्यक्त्व का घात करता है, अतः मिश्र आदि गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता है ।

एकेन्द्रिय से चउरिन्द्रिय तक के जीवों को उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता है, अतः उपशम सम्यक्त्व से गिरकर सास्वादन में भी नहीं जाते हैं, अतः सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी चार और स्थावर आदि पाँच का उदय विच्छेद होता है ।

मीसे सयमणु पुव्वीणुदया मीसोदएण मीसंतो ।
चउ सयमजए सम्मा-णु पुव्वि खेवा बिअकसाया ।।15।।
मणु तिरिणु पुव्वि विउवट्ठ दुहग अणाइज्जदुग सतर छेओ ।
सगसीइ देसि तिरिगइ आउ निउज्जोय तिकसाया ।।16।।

शब्दार्थ :-

मीसे=मिश्र गुणस्थानक में
सयं=100
अणुपुव्वीणुदया=आनुपूर्वी के अनुदय से
मीसोदयेण=मिश्र के उदय से
मीसंतो=मिश्र के अंत में
चउ सयं=104
अजए=अविरति गुणस्थानक में
सम्म=सम्यक्त्व मोहनीय
आणुपुव्वि=आनुपूर्वी
खेवा=डालने से
बिअकसाया=दूसरे अप्रत्याख्यानीय कषाय
मणु=मनुष्य
तिरिणु पुव्वि=तिर्यंचानुपूर्वी
विउवट्ठ=वैक्रिय अष्टक
दुहग=दौर्भाग्य
अणाइज्जदुग=अनादेय द्विक
सतर=सत्रह
छेओ=छेद
सगसीइ=सत्याशी
देसि=देशविरति गुणस्थानक में
तिरिगइ=तिर्यंच गति
आउ=आयुष्य
निउज्जोय=नीच गोत्र, उद्योत
तिकसाया=प्रत्याख्यानीय कषाय

भावार्थ :- आनुपूर्वी का अनुदय तथा मिश्र मोहनीय का उदय होने से मिश्र गुणस्थानक में उदय में 100 कर्मप्रकृति होती हैं । वहाँ मिश्र मोहनीय के उदय का उच्छेद होता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और आनुपूर्वी चतुष्क को जोड़ने से 104 प्रकृति का उदय होता है ।

चौथे गुणस्थानक के अंत में अप्रत्याख्यानीय कषाय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिय अष्टक, दौर्भाग्य अनादेय द्विक- इन 7 कर्म प्रकृति का विच्छेद होता है ।

देशविरति गुणस्थानक में 87 कर्मप्रकृति उदय में होती है । देशविरति

के अंत में तिर्यंच गति, तिर्यंच आयुष्य, नीच गोत्र, उद्योत नाम कर्म तथा तीसरे प्रत्याख्यानीय कषाय के उदय का विच्छेद होता है ।

विवेचन :-

मिश्र गुणस्थानक में 100 का उदय

सास्वादन गुणस्थानक में 111 प्रकृति का उदय होता है । उस गुणस्थानक के अंत में 9 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है । 111 में से 9 कम करने पर 102 रहती है । फिर मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और देवानुपूर्वी कम करने पर 99 रहेगी, उसमें मिश्र मोहनीय का उदय जोड़ने पर 99+1=100 प्रकृति का उदय होगा ।

100 **प्रकृति**

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	22
आयुष्य	4
नाम	51
गोत्र	2
अंतराय	5
	100

मिश्र गुणस्थानक में किसी जीव की मृत्यु नहीं होती है । भवांतर में जाने वाले जीव को ही आनुपूर्वी का उदय होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का अनुदय कहा, अब शेष मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और देवानुपूर्वी का भी अनुदय तीसरे गुणस्थानक में रहता है ।

मिश्र मोहनीय का उदय मिश्र गुणस्थानक में ही होता है- आगे के गुणस्थानकों में उसका उदय विच्छेद होता है ।

चौथे अविरत गुणस्थानक में 104 का उदय

मिश्र गुणस्थानक में 100 कर्मप्रकृति का उदय होता है। मिश्र गुणस्थानक के अंत में मिश्र मोहनीय का उच्छेद होता है, परंतु चौथे गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होता है।

अतः एक प्रकृति घटती है और एक प्रकृति के बढ़ने से वो ही संख्या रहती है।

इसके साथ ही चौथे गुणस्थानक से मरकर जीव चारों गति में उत्पन्न हो सकता है, अतः इस गुणस्थानक में चारों आनुपूर्वी का उदय होने से 100+4=104 कर्म प्रकृति का उदय होता है।

104 **प्रकृति**

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	22
आयुष्य	4
नाम	55
गोत्र	2
अंतराय	5
	104

चौथे गुणस्थानक के अंत में 17 का उदय विच्छेद

चौथे गुणस्थानक के अंत में अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देव गति, देवानुपूर्वी, देव आयुष्य नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरक आयुष्य, दौर्भाग्य, अनादेय और अपयश- इन सत्रह प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होने से देशविरति गुणस्थानक में 104-17=87 कर्म प्रकृति का उदय होता है।

देशविरति में 87 प्रकृति

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	18
आयुष्य	2
नाम	44
गोत्र	2
अंतराय	5
	87

अप्रत्याख्यानीय कषाय के उदय में देशविरति गुणस्थानक की प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि अप्रत्याख्यानीय कषाय का उदय देशविरति में बाधक है ।

आनुपूर्वी का उदय पर-भव में जाते समय ही होता है । देशविरति और उसके ऊपर के गुणस्थानकों में आनुपूर्वी का उदय नहीं होता है, अतः चौथे गुणस्थानक के अंत में ही आनुपूर्वी का उच्छेद हो जाता है ।

वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवगति, देव आयुष्य, नरक गति, नरक आयुष्य- इन छ प्रकृतियों का उदय देव व नारकी को ही होता है । देव व नारक अधिकतम चार गुणस्थानक को ही प्राप्त कर सकते हैं, अतः देशविरति गुणस्थानक में इन छह प्रकृतियों का उदय नहीं होता है ।

देशविरति के अंत में 8 का उदय विच्छेद

देशविरति गुणस्थानक के अंत में तिर्यंच गति, तिर्यंच आयुष्य, नीच गोत्र, उद्योत तथा अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया और लोभ इन आठ प्रकृतियों के उदय का विच्छेद हो जाता है, अर्थात् आगे के गुणस्थानक में इन आठ प्रकृतियों का उदय नहीं होता है ।

अट्ठच्छेओ इगसी पमत्ति आहार जुगल पक्खेवा ।
थीणतिगाहारगदुगच्छेओ छस्सयरि अपमत्ते ।।17।।

शब्दार्थ :-

अट्ठच्छेओ=आठ का छेद	**आहारग दुग=**आहारक द्विक
इगसी=इक्यासी	**छेओ=**छेद
पमत्ति=प्रमत्त गुणस्थानक में	**छसयरि=**76
आहार जुगल=आहारक द्विक	**अपमत्ते=**अप्रमत्त गुणस्थानक में
पक्खेवा=प्रक्षेप से	
थीण तिग=थीणद्धि त्रिक	

भावार्थ :- आठ कर्मप्रकृति का उदय विच्छेद होने से और आहारक द्विक को जोड़ने से प्रमत्त गुणस्थानक में 81 प्रकृति का उदय होता है । वहाँ थीणद्धि त्रिक और आहारक द्विक का उदय विच्छेद होने से अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

विवेचन :-

प्रमत्त गुणस्थानक में 81 का उदय

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	14
आयुष्य	1
नाम	44
गोत्र	1
अंतराय	5
	81

देशविरति गुणस्थानक के अंत में 8 का विच्छेद होने से 87-8=79

रहती हैं । उसमें आहारक द्विक को जोड़ने से 79+2=81 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

आहारक शरीर की रचना प्रमत्त गुणस्थानक में ही होती है । अतः यहाँ आहारक द्विक को जोड़ा गया ।

प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में 5 का उदय विच्छेद

प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, थीणद्धि, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग- इन प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होने से अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

76 प्रकृतियाँ

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	14
आयुष्य	1
नाम	42
गोत्र	1
अंतराय	5
	76

जब तक प्रमाद दशा है, तभी तक निद्रा आदि की संभावना रहती है, अतः अप्रमत्त गुणस्थानक में प्रमाद के अभाव से निद्रा निद्रा, प्रचला-प्रचला और थीणद्धि निद्रा के उदय का विच्छेद हो जाता है ।

आहारक लब्धि धारी मुनि अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग प्रमाद दशा में ही करते हैं, अतः अप्रमत्त गुणस्थानक में आहारक द्विक के भी उदय का विच्छेद हो जाता है । इस प्रकार 5 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होने से अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 प्रकृतियों का उदय होता है ।

सम्मत्तं तिमसंघयण तियगच्छेओ बिसत्तरि अपुव्वे ।
हासाइ छक्क अंतो, छसट्ठि अनियट्टि वेयतिगं ।।18।।
संजलणतिगं छच्छेओ, सट्ठि सुहुमंमि तुरियलोभंतो ।
उवसंतगुणे गुणसट्ठि रिसह नाराय दुग अंतो ।।19।।

शब्दार्थ :-

सम्मत्तं=सम्यक्त्व मोहनीय
तिम संघयण=अंतिम संघयण
तियग=तीन
च्छेओ=छेद
बिसत्तरि=72
अपुव्वे=अपूर्व गुणस्थानक में
हासाइ=हास्यादि
छक्कअंतो=छह का अंत
छसट्ठि=66
अनियट्टि=अनिवृत्ति गुणस्थानक में
वेयतिग=वेद त्रिक
संजलण तिगं=संज्वलन त्रिक
छच्छेओ=छह का छेद
सट्ठि=60
सुहुमंमि=सूक्ष्म संपराय में
तुरिय=चौथे
लोभंतो=लोभ का अंत
उवसंतगुणे=उपशांत गुणस्थानक में
गुणसट्ठि=59
रिसह नाराय=ऋषभ नाराच
दुग अंतो=दो का अंत

भावार्थ :- अप्रमत्त गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और अंतिम तीन संघयण के उदय का विच्छेद होता है । अतः अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 कर्मप्रकृति का उदय होता है ।

वहाँ हास्यादि छह का विच्छेद होने से अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 कर्म प्रकृति का उदय होता है । वहाँ वेदत्रिक और संज्वलन त्रिक के उदय का विच्छेद होता है, अतः सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 प्रकृति का उदय होता है, वहाँ चौथे संज्वलन लोभ के उदय का विच्छेद होता है अतः उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 प्रकृति का उदय रहता है । वहाँ ऋषभ नाराच और नाराच इन दो संघयण के उदय का विच्छेद होता है ।

विवेचन :-

8वें अपूर्वकरण में 72 का उदय

ज्ञानावरणीय 5

दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	13
आयुष्य	1
नाम	39
गोत्र	1
अंतराय	5
	72

आठवें गुणस्थानक से उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी का प्रारंभ होता है ।

समकित मोहनीय के उदयवाली आत्मा किसी भी श्रेणी पर आरूढ़ नहीं होती है, अतः 8वें गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय के उदय का विच्छेद होता है ।

अंतिम तीन संघयण अर्थात् अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त संघयणवाली आत्मा भी उपशम या क्षपक श्रेणी पर नहीं चढती है, अतः उन तीन संघयणों का भी उदय विच्छेद हो जाता है ।

नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 का उदय

अपूर्वकरण गुणस्थानक के अंत में हास्य, रति, शोक, अरति, भय, जुगुप्सा- इन छह प्रकृतियों के उदय का भी अंत आ जाता है, अतः नौवें गुणस्थानक में 72-6=66 प्रकृतियों का उदय होता है ।

66 प्रकृतियाँ

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	7
आयुष्य	1
नाम	39
गोत्र	1
अंतराय	5
	66

हास्य आदि षट्क के परिणाम संक्लेशयुक्त कहलाते हैं, जबकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में परिणाम विशुद्ध होते हैं, अतः वहाँ हास्यषट्क का उदय नहीं होता है ।

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 का उदय

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	1
आयुष्य	1
नाम	39
गोत्र	1
अंतराय	5
	60

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के अंत में पुरुषवेद, स्त्री वेद , नपुंसक वेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान और संज्वलन माया के उदय का विच्छेद हो जाने से उपशांतमोह नाम के 10वें गुणस्थानक में 66-6=60 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

क्षपक श्रेणी पर चढ़ी आत्मा नौवें गुणस्थानक में सूक्ष्म संज्वलन लोभ को छोड़कर मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का क्षय कर देती है और उपशम श्रेणी पर चढ़ी आत्मा सूक्ष्म संज्वलन लोभ को छोड़कर मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का उपशमन कर देती है, अतः 10वें गुणस्थानक में वेदत्रिक और संज्वलनत्रिक के उदय का भी विच्छेद हो जाता है ।

11वें उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 का उदय

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	x
आयुष्य	1

नाम	39
गोत्र	1
अंतराय	5
	59

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 प्रकृतियों का उदय होता है, उस गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्म संज्वलन लोभ के उदय का उच्छेद हो जाने से 11वें गुणस्थानक में 60-1=59 प्रकृतियों का उदय होता है ।

उपशांतमोह के अंत में ऋषभ नाराच और नाराच इन दो संघयणों के उदय का भी उच्छेद हो जाता है, क्योंकि क्षपक श्रेणी पर सिर्फ वज्रऋषभ नाराच संघयणवाली आत्मा ही चढ़ सकती है, अतः इन दो संघयणों के उदय का भी उच्छेद हो जाता है ।

सगवन्न खीण दुचरिमि, निद्द दुगंतो अ चरिमि पणवन्ना ।
नाणंतराय दंसण चउ छेओ सजोगि बायाला ।।20।।

शब्दार्थ :-

सगवन्न=57	**पणवन्ना**=55
खीण= क्षीणमोह गुणस्थानक	**नाणंतराय**=ज्ञान-अंतराय
दुचरिमि=द्विचरम समय में	**दंसण**=दशक
निद्द दुग= निद्रा द्विक	**चउ**=चार
अंतो=नाश	**छेओ**=छेद
अ=तथा	**सजोगि**=सयोगी
चरिमि=चरम समय में	**बायाला**=42

भावार्थ :- क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 57 प्रकृतियों का उदय होता है । निद्रा द्विक का अंत होने पर क्षीणमोह के अंतिम समय में 55 प्रकृतियों का उदय होता है । वहाँ ज्ञानावरणीय व अंतराय की 10 और दर्शनावरणीय की 5 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है, तथा तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होता है, अतः सयोगी गुणस्थानक में 42 प्रकृतियों का उदय होता है ।

विवेचन :-

क्षीणमोह गुणस्थानक में 57 का उदय

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
आयुष्य	1
नाम	37
गोत्र	1
अंतराय	5
	57

क्षीणमोह गुणस्थानक में 57 प्रकृतियाँ उदय में होती है, परंतु उस गुणस्थानक के अंतिम दो समय (द्विचरम समय) बाकी तब निद्रा द्विक (निद्रा, प्रचला) का उच्छेद हो जाता है, अतः क्षीणमोह के अंतिमसमय में 57-2=55 प्रकृतियों का उदय होता है ।

क्षीणमोह के अंत में 14 का उच्छेद :-

क्षीणमोह गुणस्थानक के चरम समयतक 55 प्रकृतियों का उदय होता है, परंतु अंतिम समय के साथ ही ज्ञानावरणीय की 5 प्रकृतियाँ- (1) मति ज्ञानावरण (2) श्रुत ज्ञानावरण (3) अवधिज्ञानावरण (4) मनः पर्यवज्ञानावरण (5) केवलज्ञानावरण ।

दर्शनावरणीय की 4 प्रकृतियाँ- (1) चक्षु दर्शनावरण (2) अचक्षु दर्शनावरण (3) अवधि दर्शनावरण (4) केवल दर्शनावरण । अंतराय कर्म की (5) प्रकृतियाँ (1) दानांतराय (2) लाभांतराय (3) भोगांतराय (4) उपभोगांतराय और (5) वीर्यांतराय ।

इस प्रकार 5+4+5=14 प्रकृतियों का नाश हो जाता है, अतः 55-14=41 प्रकृतियाँ हुईं ।

इसके साथ ही इसी गुणस्थानक में किसी जीव को तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होने से 41+1=42 प्रकृतियों का उदय होता है ।

42 प्रकृतियाँ

ज्ञानावरणीय	x
दर्शनावरणीय	x
वेदनीय	2
मोहनीय	x
आयु	1
नाम	38
गोत्र	1
अंतराय	x
	42

तित्थुदया उरला थिर, खगइ दुग परित्त तिग छ संठाणा ।
अगुरुलहु वन्नचउ निमिण तेय कम्माइसंघयणं ।।21।।
दूसर सुसर साया साएगयरं च तीसवुच्छेओ ।
बारस अजोगि सुभगाइज्ज जसन्नयर वेयणीयं ।।22।।

शब्दार्थ :-

तित्थुदया=तीर्थंकर नाम के उदय से
उरला=औदारिक
थिर=स्थिर
खगइ दुग=दो विहायोगति
परित्त तिग=प्रत्येक त्रिक
छ संठाणा=छह संस्थान
अगुरुलहु=अगुरुलघु
वन्नचउ=वर्ण चतुष्क
निमिण=निर्माण
तेय=तैजस शरीर
कम्माइ=कार्मण शरीर
आइसंघयणं=पहला संघयण
दूसर=दु:स्वर
सुसर=सुस्वर
साया=शाता
साएगयरं=अशाता में से एक
तीसवुच्छेओ=30का उदय विच्छेद
बारस=बारह
अजोगि=अयोगी
सुभगाइज्ज=सौभाग्य-आदेय
जस=यश
अन्नयर=दो में से एक
वेयणीयं=वेदनीय

भावार्थ :- सयोगी गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होने से 42 प्रकृति उदय में होती है। सयोगी के अंत में औदारिक द्विक, अस्थिर द्विक, विहायोगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, 6 संस्थान, अगुरुलघु चतुष्क, वर्ण चतुष्क, निर्माण, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रथम संघयण, दुःस्वर, सुस्वर शाता-अशाता में से कोई एक वेदनीय। इस प्रकार 30 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है।

अयोगी गुणस्थानक में 12 प्रकृति का उदय होता है।

वहाँ सौभाग्य, आदेय, यश, शाता-अशाता में से एक वेदनीय, त्रस त्रिक, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्य आयुष्य, मनुष्य गति, जिन नाम तथा उच्चगोत्र इन 12 प्रकृतियों का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में उदय विच्छेद होता है।

विवेचनः तेरहवें सयोगी गुणस्थानक में 42 कर्म प्रकृतियों का उदय होता है। उस गुणस्थानक के अंत में 30 कर्म प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है।

30 का उदय विच्छेद

1. औदारिक शरीर 2. औदारिक अंगोपांग 3. अस्थिर 4. अशुभ
5. शुभ विहायोगति 6. अशुभ विहायोगति 7. प्रत्येक 8. स्थिर
9. शुभ 10. समचतुरस्त्र 11. न्यग्रोध परिमंडल
12. सादि 13. वामन 14. कुब्ज 15. हुंडक
16. अगुरुलघु 17. पराघात 18. उपघात 19. श्वासोच्छ्वास
20. वर्ण 21. गंध 22. रस 23. स्पर्श
24. निर्माण 25. तैजस शरीर 26. कार्मण शरीर
27. प्रथम संघयण 28. दुःस्वर 29. सुस्वर और
30. शाता या अशाता में से कोई एक-इस प्रकार सयोगी के अंत में 30 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद हो जाने से अयोगी गुणस्थानक में सिर्फ 12 प्रकृतियों का ही उदय होता है।

अयोगी गुणस्थानक में 12 का उदय

1 शाता या अशाता 2 मनुष्य आयुष्य 3 मनुष्य गति 4 पंचेन्द्रिय जाति 5 तीर्थंकर नाम कर्म 6 त्रस 7 बादर 8 पर्याप्त 9 सुभग 10 आदेय 11 यश 12 उच्च गोत्र।

14वें के अंत में इन बारह प्रकृतियों के भी उदय का विच्छेद हो जाने से आत्मा सभी कर्मों से मुक्त बनकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त कर लेती है ।

उदय-यंत्र

	गुणस्थानक	मूल कर्म	ज्ञाना-वरणीय	दर्शना-वरणीय	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	कुल
	सामान्य से	8	5	9	2	28	4	67	2	5	122
1.	मिथ्यात्व	8	5	9	2	26	4	64	2	5	117
2.	सास्वादन	8	5	9	2	25	4	59	2	5	111
3.	मिश्र	8	5	9	2	22	4	51	2	5	100
4.	अविरत सम्यग्दृष्टि	8	5	9	2	22	4	55	2	5	104
5.	देश विरति	8	5	9	2	18	2	44	2	5	87
6.	प्रमत्त	8	5	9	2	14	1	44	1	5	81
7.	अप्रमत्त	8	5	6	2	14	1	42	1	5	76
8.	अपूर्व करण	8	5	6	2	13	1	39	1	5	72
9.	अनिवृत्तिकरण	8	5	6	2	7	1	39	1	5	66
10.	सूक्ष्म संपराय	8	5	6	2	1	1	39	1	5	60
11.	उपशांतमोह	7	5	6	2	-	1	39	1	5	59
12.	क्षीणमोह	7	5	6/4	2	-	1	37	1	5	57/55
13.	सयोगी	4	-	-	2	-	1	38	1	-	42
14.	अयोगी	4	-	-	1	-	1	9	1	-	12

7 उदीरणा

तस तिग पणिंदि मणुआउ गइ जिणुच्चंति चरिम समयंतो ।
उदउव्वुदीरणा परम पमत्ताइ सगगुणेसु ।।23।।
एसा पयडितिगुणा वेयणियाहार जुगल थीण तीगं ।
मणुआउ पमत्तंता अजोगि अणुदीरगो भयवं ।।24।।

शब्दार्थ :-

तसतिग=त्रसत्रिक	**एसा**=यह
पणिंदि=पंचेन्द्रिय	**पयडि**=प्रकृति
मणुआउ=मनुष्य आयुष्य	**तिगुणा**=त्रिक न्यून
गइ=गति	**वेयणिय**=वेदनीय
जिण=जिन नाम	**आहार जुगल**=आहारक द्विक
उच्चं=उच्च गोत्र	**थीणतिगं**=थीणद्धि त्रिक
चरिम=अंतिम	**मणुआउ**=मनुष्य आयुष्य
समयंतो=समय में नाश	**पमत्तंता**=प्रमत्त के अंत में
उदउव्वुदीरणा=उदय की तरह उदीरणा	**अजोगि**=अयोगी
परं=परंतु	**अणुदीरगो**=अनुदीरक
अपमत्ताइ=अप्रमत्त आदि	**भयवं**=भगवान
सगगुणेसु=सात गुणस्थानकों में	

भावार्थ :- उदय की तरह उदीरणा समझनी चाहिए, परंतु अप्रमत्त आदि सात गुणस्थानकों में उदीरणा, तीन, तीन प्रकृति से न्यून समझनी चाहिए ।

प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में दो वेदनीय, आहारक द्विक, थीणद्धि त्रिक और मनुष्य आयुष्य इन आठ प्रकृतियों की उदीरणा का विच्छेद होता है । अयोगी भगवंत उदीरणा रहित होते हैं ।

विवेचन :- विपाकोदयवाली कर्मप्रकृतियों को प्रयत्न विशेष द्वारा उदय में लाकर भोगना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

जिस कर्म प्रकृति का विपाकोदय हो, उसी की उदीरणा होती है, परंतु

जिसका प्रदेशोदय हो, उसकी उदीरणा नहीं होती है ।

पहले से छठे गुणस्थानक में उदय और उदीरणा एक समान है, अर्थात् जितने कर्मों का उदय होता है, उतने ही कर्मों की उदीरणा होती है ।

उदा.	उदय	उदीरणा
पहला मिथ्यात्व गुणस्थानक	117	117
दूसरा सास्वादन गुणस्थानक	111	111
तीसरा मिश्र गुणस्थानक	100	100
चौथा अविरत गुणस्थानक	104	104
पाँचवाँ देशविरति गुणस्थानक	87	87
छठा सर्वविरति गुणस्थानक	81	81

अप्रमत्त आदि गुणस्थानकों में उदय-उदीरणा एक समान नहीं होते हैं । वहाँ उदय की अपेक्षा उदीरणा में तीन प्रकृतियाँ कम होती हैं ।

उदा.

अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 का उदय है, परंतु उदीरणा 73 की ही होती है, क्योंकि इस गुणस्थानक में वेदनीय द्विक और मनुष्य आयु- इन तीन की उदीरणा नहीं होती है ।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का उदय है, परंतु उदीरणा 69 की होती है ।

नौवें गुणस्थानक में 66 का उदय, 63 की उदीरणा ।

दसवें गुणस्थानक में 60 का उदय, 57 की उदीरणा ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में 59 का उदय, 56 की उदीरणा ।

बारहवें गुणस्थानक में 57 का उदय, 54 की उदीरणा ।

तेरहवें गुणस्थानक में 42 का उदय, 39 की उदीरणा होती है ।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का निरोध हो जाने से वहाँ कर्मों की उदीरणा नहीं होती है ।

उदीरणा यंत्र

	गुणस्थानक	मूल कर्म	ज्ञाना-वरणीय	दर्शना-वरणीय	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	कुल
	सामान्य से	8	5	9	2	28	4	67	2	5	122
1.	मिथ्यात्व	8	5	9	2	26	4	64	2	5	117
2.	सास्वादन	8	5	9	2	25	4	59	2	5	111
3.	मिश्र	8	5	9	2	22	4	51	2	5	100
4.	अविरत सम्यग्दृष्टि	8	5	9	2	22	4	55	2	5	104
5.	देश विरति	8	5	9	2	18	2	44	2	5	87
6.	सर्व विरति	8	5	9	2	14	1	44	1	5	81
7.	अप्रमत्त	6	5	6	--	14	--	42	1	5	73
8.	अपूर्व करण	6	5	6	--	13	--	39	1	5	69
9.	अनिवृत्तिकरण	6	5	6	--	7	--	39	1	5	63
10.	सूक्ष्म संपराय	6	5	6	--	1	--	39	1	5	57
11.	उपशांतमोह	5	5	6	--	-	--	39	1	5	56
12.	क्षीणमोह	5	5	6/4	--	-	--	37	1	5	54/52
13.	सयोगी	2	--	--	--	-	--	38	1	-	39
14.	अयोगी	--	--	--	--	--	--	--	--	--	--

8 सत्ता-विधान

सत्ता कम्माण ठिइ बंधाइ लद्ध अत्तलाभाणं ।
संते अडयालसयं जा उवसमु विजिणु बिय तइए ।।25।।

शब्दार्थ :-

सत्ता=सत्ता	**अडयाल सयं**=148
कम्माण ठिइ=कर्म की स्थिति	**जा**=यावत्
बंधाइ=बंध आदि	**उवसमु**=उपशांतमोह
लद्ध=प्राप्त	**विजिणु**=जिन नाम बिना
अत्तलाभाणं=आत्मा को प्राप्त	**बिय**=दूसरे
संते=होने पर	**तइए**=तीसरे में

भावार्थ :- बंध आदि के द्वारा स्व स्वरूप को जिन्होंने प्राप्त किया है ऐसे कर्मों का आत्मा के साथ रहना, उसे सत्ता कहते हैं। उपशांत मोह गुणस्थानक तक सत्ता में 148 कर्म प्रकृति होती है। दूसरे-तीसरे गुणस्थानक में जिननाम की सत्ता नहीं होती है।

विवेचन :- मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओं से आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है। आत्मा के साथ जुडने पर वे कर्मरूप बन जाते है, उन कर्मों का आत्मा के साथ लगे रहना, उसी को सत्ता कहते हैं।

कई बार कर्मबंध हो जाने के बाद भी वे कर्म अन्यरूप में संक्रमित हो जाते हैं, जैसे-शाता रूप में बँधे हुए कर्म अशाता में बदल जाते हैं। कभी अशाता के रूप में बँधे हुए कर्म शाता में बदल जाते हैं।

तिर्यंच गति के रूप में बँधे कर्म दलिक नरकगति में बदल जाते हैं। इन सब परिवर्तन को संक्रमणकरण कहते हैं। इस प्रकार संक्रमणकरण द्वारा प्राप्त कर्म स्वरूप का भी आत्मा के साथ लगे रहना, उसे भी सत्ता कहते है।

सामान्य सत्ता में 148 कर्म प्रकृति

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	28

आयुष्य	4
नाम	93
गोत्र	2
अंतराय	5
	148

यद्यपि बंध में 120 प्रकृतियाँ गिनी गई हैं, फिर भी सत्ता में 148 गिनी हैं। उसका कारण है- सत्ता में वर्ण-गंध-रस और स्पर्श के 20 भेद माने गए हैं। वर्ण के 5, रस के 5 गंध के 2 व स्पर्श के 8 - इस प्रकार बंध की अपेक्षा सत्ता में 16 ज्यादा हैं।

(2) बंध में 5 शरीर नाम कर्म गिने गए हैं, उनमें 5 शरीर बंधन व 5 संघातन का भी समावेश कर दिया गया है, जबकि सत्ता में 5 शरीर, 5 बंधन व 5 संघातन की अलग-अलग विवक्षा करने से 10 प्रकृतियाँ बढ़ जाती हैं।

(3) बंध में मिथ्यात्व मोहनीय की 1 प्रकृति है, परंतु सत्ता में मिथ्यात्व मोहनीय की 3 प्रकृतियाँ हैं- समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय।

इस प्रकार बंध की अपेक्षा सत्ता में 28 प्रकृतियाँ अधिक हैं। उनमें मोहनीय की 2 और नाम कर्म की 26 है।

सत्ता के दो भेद :-

(1) संभव सत्ता :- वर्तमान में जिस प्रकृति की सत्ता न होने पर भी भविष्य में उसकी सत्ता की संभावना मानकर जो सत्ता मानी जाती है, उसे संभव सत्ता कहते हैं।

(2) सद्भाव सत्ता :- जिस समय जिस कर्म की सत्ता विद्यमान हो, उसे सद्भाव सत्ता कहते हैं।

उदा. जिस आत्मा ने नरक या तिर्यंच गति के आयुष्य का बंध कर दिया हो, वह आत्मा उपशम श्रेणी पर आरुढ़ नहीं होती है, फिर भी 11वें गुणस्थानक में 148 प्रकृतियों की सत्ता मानी गई है, क्योंकि भले ही 11वें गुणस्थानक पर चढ़ी आत्मा में नरक आयु व तिर्यंच आयुष्य की सद्भाव सत्ता नहीं है, फिर भी वह आत्मा 11वें गुणस्थानक से गिरकर नीचे आने पर तिर्यंच व नरक के आयुष्य का भी बंध कर सकती है, अतः उसकी भी संभव सत्ता

वहाँ मानी गई है ।

संभव सत्ता :-

1 मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 की सत्ता :- किसी जीव ने मिथ्यात्व गुणस्थानक में नरक आयु का बंध किया हो, फिर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करे- फिर आयुष्य पूर्ण कर सम्यक्त्व का वमनकर नरक में जाए, वहाँ पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करे- उस जीव की अपेक्षा से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 की सत्ता मानी गई है ।

2-3- सास्वादन और मिश्र गुणस्थानक :- इन दो गुणस्थानकों में 147 की संभव सत्ता मानी गई है । क्योंकि जिन नाम कर्म की सत्ता वाला जीव तथास्वभाव से ही दूसरे और तीसरे गुणस्थानक को प्राप्त नहीं करता है ।

4 से 7 अविरत सम्यग्दृष्टि से अप्रमत्त तक 148 की सत्ता :- चौथे से सातवें गुणस्थानक तक 148 की सत्ता होती है, क्योंकि नरकादि चारों आयुष्य की सत्तावाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव अप्रमत्त गुणस्थानक तक जा सकते है, परंतु उसके आगे नहीं, अतः उनको 148 की सत्ता होती है ।

8 से 11 गुणस्थानक :-

सद्भाव सत्ता :- जो कर्म विद्यमान हो, उस कर्म की सत्ता को सद्भाव सत्ता कहते हैं ।

1 मिथ्यात्व गुणस्थानक :- जो जीव अनादि मिथ्यादृष्टि है अर्थात् अभी तक सम्यक्त्व पाए न हो, उनके समकित मोहनीय, मिश्रमोहनीय जिन नाम कर्म और आहारक चतुष्क- इन सात प्रकृतियों को छोड़ 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं ।

जिन जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया हो और वहाँ गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थानक में आए हों, उन जीवों को 148 की सत्ता हो सकती है ।

2 चौथे से 7 वाँ गुणस्थानक :- उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को चौथे से छठे गुणस्थानक में आहारक चतुष्क को छोड़कर 144 प्रकृति सत्ता में होती है तथा सातवें गुणस्थानक में आहारक द्विक का बंध होने से सत्ता में 148 कर्म प्रकृति होती है ।

क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को 148 एवं क्षायिक समकिती को दर्शन सप्तक छोडकर 141 प्रकृति सत्ता में होती हैं ।

अपुव्वाइ चउक्के अण तिरि निरयाउ विणु बियालसयं ।
सम्माइ चउसु सत्तगखयंमि इग चत्त सयमहवा ।।26।।

शब्दार्थ :-

अपुव्वाइ=अपूर्वकरण आदि	**सम्माइ=**सम्यक्त्व आदि
चउक्के=चतुष्क में	**चउसु=**चार में
अण=अनंतानुबंधी	**सत्तग=**सप्तक
तिरि=तिर्यंच	**खयंमि=**क्षय होने पर
निरयाउ=नरक आयुष्य	**इगचत्त=**इगतालीस
विणु=बिना	**सयं=**100
बियालसयं=142	**अहवा=**अथवा

भावार्थ :- अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी चतुष्क, तिर्यंच आयु व नरक आयु को छोड़कर 142 प्रकृति सत्ता में होती है, और अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानक में दर्शन सप्तक का क्षय होने से 141 प्रकृति सत्ता में होती है ।

विवेचन :- (1) जो जीव अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क की विसंयोजना कर देवायु का बंधकर उपशम श्रेणी पर चढ़ता है, उस जीव को आठवें आदि गुणस्थानकों में 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

(2) दर्शन सप्तक का क्षयकर जिन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया हो, उन्हें चौथे से सातवें गुणस्थानक में 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं ।

खवगं तु पप्प चउसुवि पणयालं निरय तिरि सुराउ विणा ।
सत्तग विणु अडतीसं, जा अनियट्टि पढम भागो ।।27।।

शब्दार्थ :-

खवगं=क्षपक	**निरय=**नरक
पप्प=प्राप्तकर	**तिरि=**तिर्यंच
चउसुवि=चारों में	**सुराउ=**देव आयुष्य
पणयालं=145	**विणा=**बिना
	सत्तग=सप्तक

विणु=बिना	**अनियट्टि**=अनिवृत्ति
अडतीसं=138	**पढम भागो**=प्रथम भाग
जा=जो	

भावार्थ :- क्षपक की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में नरक आयु, तिर्यंच आयु और देवायु को छोड़ 145 प्रकृति सत्ता में होती है। अनिवृत्ति गुणस्थानक के पहले समय में सप्तक के बिना 138 प्रकृतियाँ होती हैं।

विवेचन :- क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर कर्मों का क्षय करने वाले जीव क्षपक कहलाते हैं। जिन जीवों ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है, तथा उसी भव में क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले हैं, उन जीवों को नरक, तिर्यंच व देव भव के आयुष्य की सत्ता नहीं होती है, अतः उन क्षपक जीवों को चौथे से सातवें गुणस्थानक में 148 में से तीन आयुष्य घटाने पर 145 प्रकृतियाँ सत्ता में होती है।

अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शन मोह त्रिक का क्षय कर जिन्होने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है, और उसी भव में क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले हैं, उन जीवों को दर्शन सप्तक और तीन आयुष्य की सत्ता का अभाव होने से 138 प्रकृतियाँ ही सत्ता में होती हैं।

138 प्रकृतियों की सत्ता चौथे गुणस्थानक से लेकर नौवें गुणस्थानक के पहले भाग तक होती है।

थावरतिरि निरयायवदुग थीण तिगेग विगल साहारं।
सोलखओ दुवीस सयं, बियंसि बिय तिय कसायंतो ॥28॥
तइयाइसु चउदस तेर बार छ पण चउ तिहिय सय कमसो।
नपु इत्थि हासछग पुंस, तुरिय कोह मय मायखओ ॥29॥

शब्दार्थ :-

थावर=स्थावर	**थीण**=थीणद्धि
तिरि=तिर्यंच	**तिगेग**=त्रिक एक
निरयायव=नरक आतप	**विगल**=विकलेन्द्रिय
दुग=द्विक	**साहारं**=साधारण

सोलखओ=16 का क्षय	**पण**=पाँच
दुवीस सयं=122	**चउ**=चार
बियंसि=दूसरे भाग में	**तिहिय**=तीन अधिक
बिय=दूसरे अप्रत्या	**सय**=100
तिय=तीसरे प्रत्या	**इत्थि**=स्त्रीवेद
कसायंतो=कषाय का अंत	**हास छग**=हास्य षट्क
तइयाइसु=तीसरे आदि में	**पुंस**=पुरुषवेद
चउदस=चौदह	**तुरिय**=चौथा
तेर=तेरह	**कोह**=क्रोध
बार=बारह	**मय**=मद
छ=छ	**माय खओ**=माया नाश

भावार्थ :- स्थावर द्विक, तिर्यंचद्विक नरक द्विक, आतप द्विक, थीणद्धित्रिक, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रिय जाति और साधारण- इन 16 प्रकृतियों का क्षय होने से दूसरे भाग में सत्ता में 122 कर्म प्रकृति रहती है। दूसरे और तीसरे कषाय का अंत होने से तीसरे भाग में सत्ता में 114 कर्म प्रकृति रहती हैं ।

नपुंसक वेद का क्षय होने से चौथे भाग में 113 कर्म प्रकृति की सत्ता रहती है ।

स्त्रीवेद का अंत होने से पाँचवें भाग में 112 प्रकृति की सत्ता रहती है ।

हास्य षट्क का अंत होने से छठे भाग में 106 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

पुरुष वेद का क्षय होने से सातवें भाग में 105 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

संज्वलन क्रोध का क्षय होने से आठवें भाग में 104 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

संज्वलन मान का क्षय होने से नौवे भाग में 103 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

फिर संज्वलन माया का क्षय होता है ।

विवेचन :- नौवें गुणस्थानक के नौ भाग होते हैं। उन नौ भागों में कुछ-कुछ प्रकृतियों का नाश होता जाता है ।

अनिवृत्ति गुणस्थानक के पहले भाग में 138 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	9
वेदनीय	2
मोहनीय	21
आयु	1
नाम	93
गोत्र	2
अंतराय	5
	138

पहले भाग के अंत में स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आतप, उद्योत, थीणद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, एकेन्द्रिय जाति, बेइन्द्रिय जाति, तेइन्द्रिय जाति, चउरिन्द्रिय जाति और साधारण इन 16 प्रकृतियों का नाश हो जाने से दूसरे भाग में 138-16=122 कर्म प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

तीसरे भाग में 114- दूसरे भाग के अंत में अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ और प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया और लोभ-इन आठ प्रकृतियों का क्षय होने से 122–8=114 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

चौथे भाग में -113

अनिवृत्ति गुणस्थानक के तीसरे भाग के अंत में नपुंसक वेद का क्षय होने से 114-1=113 प्रकृतियों की सत्ता रहती है

पाँचवाँ भाग-112

चौथे भाग के अंत में **स्त्री** वेद का क्षय होने से 113-1=112 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

छठा भाग-106

नौवें गुणस्थानक के पाँचवें भाग के अंत में हास्य, रति, अरति, भय,

शोक, जुगुप्सा इन छह का क्षय होने से 112-6=106 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

सातवाँ भाग-105

छठे भाग के अंत में पुरुषवेद का अंत होने से सातवें भाग में 106-1=105 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

आठवाँ भाग-104

सातवें भाग के अंत में संज्वलन क्रोध की सत्ता का क्षय होने से 105-1=104 की सत्ता रहती है ।

नौवाँ भाग- 103

आठवें भाग के अंत में संज्वलन मान की सत्ता का क्षय होने से 104-1=103 की सत्ता रहती है ।

नौवें गुणस्थानक के नौवें भाग के अंत में संज्वलन माया का क्षय होने से दसवे गुणस्थानक में 102 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

सुहुमि दुसय लोहंतो, खीण दुचरिमेग सओ दुनिद्दखओ ।
नवनवइ चरिम समए, चउ दंसण नाण विग्घंतो ।।30।।

शब्दार्थ :-

सुहुमि=सूक्ष्म संपराय गुण. के	**नव नवइ**=99
दुसय=102	**चरिम समए**=अंतिम समय में
लोहंतो=लोभ का अंत	**चउ**=चार
खीण=क्षीण मोह गुण.	**दंसण**=दर्शनावरणीय
दुचरिमेग=द्विचरम समय में	**नाण**=ज्ञानावरणीय
एगसओ=एकशत–101	**विग्घंतो**=अंतराय का अंत
दुनिद्दखओ=दो निद्रा का क्षय	

भावार्थ :- सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में सत्ता में 102 प्रकृति होती है । वहाँ संज्वलन लोभ का अंत होने से क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 101 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

वहाँ निद्रा द्विक का क्षय होने से क्षीणमोह के अंतिम समय में 99 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

क्षीणमोह के अंत में चार दर्शनावरणीय, पाँच ज्ञानावरणीय और पाँच अंतराय का क्षय होता है ।

विवेचन :- 10वें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में सत्ता में 102 कर्म प्रकृति होती है-

ज्ञानावरणीय	5
दर्शनावरणीय	6
वेदनीय	2
मोहनीय	1
आयुष्य	1
नाम	80
गोत्र	2
अंतराय	5
	102

10वें गुणस्थानक के अंत में संज्वलन लोभ का क्षय होने से 12वें गुणस्थानक के द्विचरम समय में 101 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

द्विचरम समय के अंत में निद्रा और प्रचला का क्षय होने से 12वें गुणस्थानक के चरम समय में 99 की सत्ता रहती है ।

क्षीण मोह के अंतिम समय में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अंतराय- इन 14 प्रकृतियों का क्षय होने से 99-14=85 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

पणसीइ सजोगि अजोगि, दुचरिमे देव खगइ गंधदुगं ।
फासट्ठ वन्न रस तणु, बंधण संघाय पण निमिण ।।31।।
संघयण अथिर संठाण, छक्क अगुरुलहु चउ अपज्जत्तं ।
सायं व असायं वा, त्तु परितुवंगतिगं सुसर-निअं ।।32।।

शब्दार्थ :-

पणसीइ=85
सजोगि=सयोगी
अजोगि=अयोगी
दुचरिमे=द्विचरिम
देव=देव
खगइ=विहायोगति

गंधदुगं=गंध द्विक	**छक्कं**=छह
फासट्ठ=आठ स्पर्श	**अगुरुलहुचउ**=अगुरुलघु चतुष्क
वन्न=वर्ण	**अपज्जत्तं**=अपर्याप्त
रस=रस	**सायं**=शाता
तणु=शरीर	**व**=अथवा
बंधण=बंधन	**असायं**=अशाता
संघाय=संघातन	**वा**=अथवा
पण=पाँच	**परित्त**=प्रत्येक
निमिणं=निर्माण	**उवंगतिगं**=उपांग त्रिक
संघयण=संघयण	**सुसर**=सुस्वर
अथिर=अस्थिर	**निअं**=नीच
संठाण=संस्थान	

भावार्थ :- सयोगी गुणस्थानक में सत्ता में 85 प्रकृति रहती हैं। अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में देव द्विक, विहायोगति द्विक, गंध द्विक, आठ स्पर्श, पाँच वर्ण, पाँच रस, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघातन, निर्माण, छह संघयण, अस्थिर षट्क, छह, संस्थान, अगुरुलघु चतुष्क, अपर्याप्त, शाता अथवा अशाता, प्रत्येक त्रिक, उपांग त्रिक, सुस्वर और नीच गोत्र इन 72 प्रकृतियों का क्षय होता है।

विवेचन :- सयोगी गुणस्थानक एवं अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय तक 85 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय के अंत में निम्न प्रकृतियों का क्षय होता है-

1. देवगति	**2. देवानुपूर्वी**	**3. शुभ विहायोगति**
4. अशुभ विहायोगति	**5. सुगंध**	**6. दुर्गंध**
7. गुरु	**8. लघु**	**9. मृदु**
10. कर्कश	**11. शीत**	**12. उष्ण**
13. स्निग्ध	**14. रुक्ष**	**15. कृष्ण**
16. नील	**17. रक्त**	**18. पीत**
19. श्वेत	**20. तिक्त**	**21. कटु**

22. कषाय	**23. अम्ल**	**24. मधुर**
25. औदारिक शरीर	**26. वैक्रिय शरीर**	**27. आहारक शरीर**
28. तैजस शरीर	**29 कार्मण शरीर**	**30. औदारिक बंघन**
31. वैक्रिय बंधन	**32. आहारक बंघन**	**33. तैजस बंधन**
34. कार्मण बंधन	**35. औदारिक संघातन**	**36. वैक्रिय संघातन**
37. आहारक संघातन	**38. तैजस संघातन**	**39. कार्मण संघातन**
40. निर्माण	**41. वज्रऋषभ नाराच**	**42. ऋषभ नाराच**
43. नाराच	**44. अर्ध नाराच**	**45. कीलिका**
46. सेवार्त	**47. अस्थिर**	**48. अशुभ**
49. दुर्भग	**50. दुःस्वर**	**51. अनादेय**
52. अपयश	**53. समचतुरस्त्र**	**54. न्यग्रोध**
55. सादि	**56. वामन**	**57. कुब्ज**
58. हुंडक	**59. अगुरुलघु**	**60. पराघात**
61. उपघात	**62. श्वासोच्छ्वास**	**63. अपर्याप्त**
64. शाता या अशाता	**65. प्रत्येक**	**66. स्थिर**
67. शुभ	**68. औदारिक अंगोपांग**	**69. वैक्रिय अंगोपांग**
70. आहारक अंगोपांग	**71. सुस्वर**	**72 नीच गोत्र ।**

9 अयोगी गुणस्थानक में सत्ता

बिसयरि खओ य चरिमे तेरस मणुय तसतिग जसाइज्जं ।
सुभग जिणुच्च पणिंदिय साया सायेगयरछेओ ।।33।।
नर अणुपुव्वि विणा वा बारस चरिम समयंमि जो खविउं ।
पत्तो सिद्धिं देविंदवंदियं नमह तं वीरं ।।34।।

शब्दार्थ :-

बिसयरि=72
खओ=क्षय
चरिमे=अंतिम समय में
तेरस=तेरह
मणुय=मनुष्य
तसतिग=त्रस त्रिक
जसाइज्जं=यश आदेय
सुभग=सौभाग्य
जिणुच्च=जिन, उच्चगोत्र
पणिंदिय=पंचेन्द्रिय

साया=शाता	**जो**=वह
सायेगयर=अशाता में से एक	**खविउं**=खपाकर
छेओ=छेद	**पत्तो**=प्राप्त
नर=मनुष्य	**सिद्धिं**=मोक्ष
अणुपुव्वि=आनुपूर्वी	**देविंद**=देवेन्द्र
विणा=बिना	**वंदियं**=वंदित
वा=अथवा	**तं**=उन
बारस=बारह	**वीरं**=वीर को
चरिम समयंमि=चरम समय में	

भावार्थ :- अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में 72 प्रकृतियों का क्षय होता है और अंतिम समय में मनुष्यत्रिक, त्रस त्रिक, यश, आदेय, सुभग, जिन-नाम, उच्च गोत्र, पंचेन्द्रिय, शाता-अशाता में से एक वेदनीय इन तेरह प्रकृतियों का क्षय होता है ।

अथवा मनुष्यानुपूर्वी बिना 12 कर्मप्रकृति का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में क्षयकर मोक्षप्राप्त एवं देवेन्द्रों से वंदित महावीर प्रभु को नमस्कार है ।

विवेचन :- अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में 72 कर्म प्रकृतियों का नाश होता है और अंतिम समय में (1) मनुष्य गति (2) मनुष्यानुपूर्वी (3) मनुष्य आयुष्य (4) त्रस (5) बादर (6) पर्याप्त (7) पंचेन्द्रिय जाति (8) यश कीर्ति (9) आदेय (10) सुभग (11) जिन नामकर्म (12) उच्च गोत्र और (13) शाता-अशाता में से एक वेदनीय- ये तेरह प्रकृतियाँ उदय में रहती हैं । फिर `समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाति' नाम के शुक्ल ध्यान द्वारा सभी कर्मों का क्षयकर आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त कर लेती है ।

कुछ आचार्यों का मत है कि मनुष्यानुपूर्वी नाम की कर्म प्रकृति क्षेत्र विपाकी होने से इसका उदय विग्रहगति में होता है । भवस्थजीवों को इसका उदय नहीं होता है अतः अयोगी गुणस्थानक में यह प्रकृति अनुदयवाली है ।

मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म की सत्ता चौदहवें गुणस्थानक के द्विचरम समय में ही मनुष्यत्रिक में गर्भित मनुष्यगति नाम कर्म प्रकृति में स्तिबुक संक्रम द्वारा

संक्रांत होकर नष्ट हो जाती है, अतः चौदहवें गुणस्थानक के अंतिम समय में उसके दलिक नहीं रहते हैं । इस अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थानक के अंतिम समय में 12 प्रकृतियाँ ही रहती है । अंतिम समय में उन सबका क्षयकर आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करती है ।

अंत में, ग्रंथ का उपसंहार करते हुए ग्रंथकार महर्षि कहते हैं कि देवेन्द्रों द्वारा अथवा देवेन्द्रसूरि द्वारा वंदित महावीर प्रभु को सभी वंदन करें ।

परिशिष्ट

बंध यंत्र

क्रम	गुणस्थान नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अबंध
	सामान्य	8	120	5	9	2	26	4	67	2	5	0
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	3
2	सास्वादन	8	101	5	9	2	24	3	51	2	5	19
3	मिश्र	7	74	5	6	2	19	0	36	1	5	46
4	अविरत	8	77	5	6	2	19	2	37	1	5	43
5	देशविरत	8	67	5	6	2	15	1	32	1	5	53
6	प्रमत्तसंयत	8	63	5	6	2	11	1	32	1	5	57
7	अप्रमत्तविरत	8,7	59,58	5	6	1	9	1,0	31	1	5	61/62
8	अपूर्वकरण											
	भाग 1	7	58	5	6	1	9	0	31	1	5	62
	भाग 2	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	भाग 3	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64

क्रम	गुणस्थानक नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अबंध
	अपूर्वकरण भाग 4	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 5	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 6	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 7	7	26	5	4	1	9	0	1	1	5	94
9	अनिवृत्तिकरण भाग 1	7	22	5	4	1	5	0	1	1	5	98
	अनिवृत्तिकरण भाग 2	7	21	5	4	1	4	0	1	1	5	99
	अनिवृत्तिकरण भाग 3	7	20	5	4	1	3	0	1	1	5	100
	अनिवृत्तिकरण भाग 4	7	19	5	4	1	2	0	1	1	5	101
	अनिवृत्तिकरण भाग 5	7	18	5	4	1	1	0	1	1	5	102
10	सूक्ष्मसंपराय	6	17	5	4	1	0	0	1	1	5	103
11	उपशांतमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
12	क्षीणमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
13	सयोगी केवली	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
14	अयोगी केवली	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	120

2. उदय यंत्र

क्रम	गुणस्थान नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अनुदय
	सामान्य	8	122	5	9	2	28	4	67	2	5	0
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	5
2	सास्वादन	8	111	5	9	2	25	4	59	2	5	11
3	मिश्र	8	100	5	9	2	22	4	51	2	5	22
4	अविरत	8	104	5	9	2	22	4	55	2	5	18
5	देशविरत	8	87	5	9	2	18	2	44	2	5	35
6	प्रमत्तसंयत	8	81	5	9	2	14	1	44	1	5	41
7	अप्रमत्तसंयत	8	76	5	6	2	14	1	42	1	5	46
8	अपूर्वकरण	8	72	5	6	2	13	1	39	1	5	50
9	अनिवृत्तिकरण	8	66	5	6	2	7	1	39	1	5	56
10	सूक्ष्मसंपराय	8	60	5	6	2	1	1	39	1	5	62
11	उपशांतमोह	7	59	5	6	2	0	1	39	1	5	63
12	क्षीणमोह	7	57/55	5	6,4	2	0	1	37	1	5	65,67
13	सयोगीकेवली	4	42	0	0	2	0	1	38	1	0	80
14	अयोगीकेवली	4	12	0	0	1	0	1	9	1	0	110

3. उदीरणायंत्र

क्रम	गुणस्थान नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अनुदीरणा
	सामान्य	8	122	5	9	2	28	4	67	2	5	–
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	5
2	सास्वादन	8	111	5	9	2	25	4	59	2	5	11
3	मिश्र	8	100	5	9	2	22	4	51	2	5	22
4	अविरत	8	104	5	9	2	22	4	55	2	5	18
5	देशविरत	8	87	5	9	2	18	2	44	2	5	35
6	प्रमत्तसंयत	8	81	5	9	2	14	1	44	1	5	41
7	अप्रमत्तसंयत	6	73	5	6	0	14	0	42	1	5	49
8	अपूर्वकरण	6	69	5	6	0	13	0	39	1	5	53
9	अनिवृत्तिकरण	6	63	5	6	0	7	0	39	1	5	59
10	सूक्ष्मसंपराय	6	57	5	6	0	1	0	39	1	5	65
11	उपशांतमोह	5	56	5	6	0	0	0	39	1	5	66
12	क्षीणमोह	5	54,52	5	6,4	0	0	0	37	1	5	68,70
13	सयोगीकेवली	2	39	0	0	0	0	0	38	1	0	83
14	अयोगीकेवली	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	122

4. सत्ता यंत्र

14	गुणस्थानक में सत्ता	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
	सामान्य	8	148			5	9	2	28	4	93	2	5
1	मिथ्यात्व	8	148			5	9	2	28	4	93	2	5
2	सास्वादन	8	147			5	9	2	28	4	92	2	5
3	मिश्र	8	147			5	9	2	28	4	92	2	5
4	अविरत	8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
5	देशविरत	8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
6	प्रमत्तसंयत	8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
7	अप्रमत्तसंयत	8	148	148 ,141	145,138	5	3	2	28,24,21	4,1	93	2	5
8	अपूर्वकरण	8	148,142	142 ,139	138	5	9	2	28,24,21	2,1	93	2	5
9	अनिवृत्तिकरण 1	8	148,142	142 ,139	138	5	9,6	2	21	2,1	93,80	2	5
	के 2	8		0	122	5	9,6	2	21	2,1	93,80	2	5
	9 भाग 3	8		0	114	5	9,6	2	13	2,1	93,80	2	5
	होते हैं 4	8		0	113	5	9,6	2	12	2,1	93,80	2	5

14	गुणस्थानक में सत्ता	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
	5			0	112	5	9,6	2	11	2,1	93,80	2	5
	6			0	106	5	9,6	2	5	2,1	93,80	2	5
	7			0	105	5	9,6	2	4	2,1	93,80	2	5
	8			0	104	5	9,6	2	3	2,1	93,80	2	5
	9			0	103	5	9,6	2	2	2,1	93,80	2	5
10	सूक्ष्मसंपराय	8	148,142	142,139	102	5	9,6	2	28 ,24 ,21 ,1	2,1	93,80	2	5
11	उपशांतमोह	8	148,142	142,139	101	5	9,6	2	28 ,24 ,21 ,1	2,1	93	2	5
12	क्षीणमोह	7	101,99	0	101।99	5	6,4	2	0	1	80	2	5
13	सयोगीकेवली	4	85	0	85	0	0	2	0	1	80	2	0
14	अयोगीकेवली	4	85।13।12	0	85।13।12	0	0	2,1	0	1	80,9	2,1	0

- तद्भव मोक्षगामी अनन्तानुबंधी विसंयोजक उपशमश्रेणि को करने वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को 141 की सत्ता मानी जाती है ।

◆ तद्भव मोक्ष नहीं जाने वाले उपशमश्रेणि वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि की मानी जाती है ।

❑ नौवें गुणस्थानक में नौ भागों में मोहनीय के 26-24-21अंक सहित समझना चाहिये ।

गुणस्थानक-बंधादि विषयक यंत्र

आठ कर्मों की 148 प्रकृतियों का बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता किस-किस गुणस्थानक तक होती है ।

क्रम	उत्तर प्रकृतियों की संख्या का क्रम	मूल कर्म की उत्तर प्रकृतियों के नाम	किस गुणस्थानक तक बंध	किस गुणस्थानक तक उदय	किस गुणस्थानक तक उदीरणा	किस गुणस्थानक तक सत्ता
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**
1		**ज्ञानावरण 5**				
1	1	मति ज्ञानावरण	10	12	12	12
2	2	श्रुत ज्ञानावरण	10	12	12	12
3	3	अवधि ज्ञानावरण	10	12	12	12
4	4	मनः पर्याय ज्ञानावरण	10	12	12	12
5	5	केवल ज्ञानावरण	10	12	12	12
		दर्शनावरण 9				
6	1	चक्षुदर्शनावरण	10	12	12	12
7	2	अचक्षुदर्शनावरण	10	12	12	12
8	3	अवधि दर्शनावरण	10	12	12	12
9	4	केवल दर्शनावरण	10	12	12	12
10	5	निद्रा	$8\frac{1}{7}$	एक समय न्यून-12	आवलिका समयाधिक न्यून-12	एक समय न्यून-12

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
11	6	निद्रा-निद्रा	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
12	7	प्रचला	$8\frac{1}{7}$	12 .स .समय न्युन दिन	12 .समया-धिक आव-लिका न्युन	12 . समय न्युन
13	8	प्रचला-प्रचला	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
14	9	स्त्यानर्द्धि	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
		वेदनीय—2				
15	1	सातावेदनीय	13	14	6	14
16	2	असातावेदनीय	6	14	6	14
		मोहनीय—28				
17	1	सम्यक्त्व मोहनीय	बंध नहीं	4 से 7	4 से 7	7
18	2	मिश्र मोहनीय	होता है	3	3	7
19	3	मिथ्यात्व मोहनीय	1	1	1	7
20	4	अनन्तानुबंधी क्रोध	2	2	2	7
21	5	अनन्तानुबंधी मान	2	2	2	7
22	6	अनन्तानुबंधी माया	2	2	2	7
23	7	अनन्तानुबंधी लोभ	2	2	2	7
24	8	अप्रत्या० क्रोध	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
25	9	अप्रत्या० मान	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
26	10	अप्रत्या० माया	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
27	11	अप्रत्या० लोभ	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
28	12	प्रत्या० क्रोध	5	5	5	$9\frac{2}{9}$

1	2	3	4 बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
29	13	प्रत्या0 मान	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
30	14	प्रत्या0 माया	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
31	15	प्रत्या0 लोभ	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
32	16	संज्वलन क्रोध	$9\frac{2}{5}$	9	9	$9\frac{7}{9}$
33	17	संज्वलन मान	$9\frac{3}{5}$	9	9	$9\frac{8}{9}$
34	18	संज्वलन माया	$9\frac{4}{5}$	9	9	$9\frac{9}{9}$
35	19	संज्वलन लोभ	9	10	10	10
36	20	हास्य नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
37	21	रति नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
38	22	अरति नोकषाय	6	8	8	$9\frac{5}{9}$
39	23	शोक नोकषाय	6	8	8	$9\frac{5}{9}$
40	24	भय नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
41	25	जुगुप्सा नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
42	26	पुरुषवेद नोकषाय	$9\frac{1}{5}$	9	9	$9\frac{6}{9}$
43	27	स्त्रीवेद नोकषाय	2	9	9	$9\frac{4}{9}$
44	28	नपुंसकवेद	1	9	9	$9\frac{3}{9}$

आयु कर्म–4

45	1	देवायु	1से7◆	4	4	11
46	2	मनुष्यायु	4	14	6	14
47	3	तिर्यंचायु	2	5	5	7
48	4	नरकायु	1	4	4	7

◆ तीसरे गुणस्थानक में किसी आयु का बन्ध होता नहीं है, इसलिए तीसरे गुणस्थान के सिवाय ।

नाम कर्म की 93-103

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
49	1	मनुष्यगति	4	14	13	14
50	2	तिर्यंचगति	2	5	5	$9\frac{1}{9}$
51	3	देवगति	$8\frac{6}{9}$	4	4	14
52	4	नरकगति	1	4	4	$9\frac{1}{9}$
53	5	एकेन्द्रियजाति◆	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
54	6	द्वीन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
55	7	त्रीन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
56	8	चतुरन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
57	9	पंचेन्द्रियजाति	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
58	10	औदारिक शरीर	4	13	13	14 द्विचरम समय
59	11	वैक्रिय शरीर	$8\frac{6}{9}$	4	4	14 द्विचरम समय
60	12	आहारक शरीर	$8\frac{6}{9}$	छठवां	छठवां	14 द्विचरम समय
61	13	तैजस शरीर	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
62	14	कार्मण शरीर	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
63	15	औदारिक अंगोपांग	4	13	13	14 द्विचरम समय
64	16	वैक्रिय अंगोपांग	$8\frac{6}{9}$	4	4	14 द्विचरम समय
65	17	आहारक अंगोपांग	$8\frac{6}{9}$	छठवां	छठवां	14 द्विचरम समय
66	18	औदारिक बंधन	—	—	—	14 द्विचरम समय
67	19	वैक्रिय बंधन	—	—	—	14 द्विचरम समय

◆ एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को मात्र पहला और दूसरा गुणस्थान–ये दो ही गुणस्थान होते हैं ।

			बंध	उदय	उदीरणा	सत्ता
68	20	आहारक बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
69	21	तैजस बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
70	22	कार्मण बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
71	23	औदारिक संघातन नाम	–	–	–	14 द्विचरम समय
72	24	वैक्रिय संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
73	25	आहारक संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
74	26	तैजस संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
75	27	कार्मण संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
76	28	वज्रऋषभ नाराच सं.	4	13	13	14 द्विचरम समय
77	29	ऋषभ नाराच सं0	2	11	11	14 द्विचरम समय
78	30	नाराच संघयन	2	11	11	14 द्विचरम समय
79	31	अर्धनाराच संघयन	2	7	7	14 द्विचरम समय
80	32	कीलिका	2	7	7	14 द्विचरम समय
81	33	सेवार्त	1	7	7	14 द्विचरम समय
82	34	सम चतुरस्त्र संस्थान	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
83	35	न्यग्रोध संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
84	36	सादि संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
85	37	वामन संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
86	38	कुब्ज संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
87	39	हुण्डक संस्थान	1	13	13	14 द्विचरम समय
88	40	कृष्ण वर्ण नाम	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
89	41	नील वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
90	42	लोहित वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
91	43	हारिद्र वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
92	44	श्वेत वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
93	45	सुरभि गंध	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
94	46	दुरभि गंध	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
95	47	तिक्करस रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
96	48	कटुक रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
97	49	कषाय रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
98	50	आम्ल रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
99	51	मधुर रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
100	52	कर्कश स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
101	53	मृदु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
102	54	गुरु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
103	55	लघु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
104	56	शीत स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
105	57	उष्ण स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
106	58	स्निग्ध स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
107	59	रुक्ष स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
108	60	नरकानुपूर्वी	1	1-4	1-4	$9\frac{1}{9}$
109	61	तिर्यंचानुपूर्वी	2	1-2-4	1-2-4	$9\frac{1}{9}$
110	62	मनुष्यानुपूर्वी	4	1-2-4	1-2-4	14 द्विचरम समय
111	63	देवानुपूर्वी	$8\frac{6}{9}$	1-2-4	1-2-4	14 द्विचरम समय
112	64	शुभविहायोगति	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय

1	2	3	4	5	6	7
113	65	अशुभविहायोगति	2	13	13	14 द्विचरम समय
114	66	पराघातनामकर्म	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
115	67	उच्छ्वास	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
116	68	आतप	1	1	1	$9\frac{1}{9}$
117	69	उद्योतनामकर्म	2	5	5	$9\frac{1}{9}$
118	70	अगुरुलघु "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
119	71	तीर्थकर "	4 से $8\frac{6}{9}$	13-14	13	14 द्विचरम समय
120	72	निर्माण "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
121	73	उपघात "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
122	74	त्रस नाम "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
123	75	बादर "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
124	76	पर्याप्त "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
125	77	प्रत्येक "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
126	78	स्थिर "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
127	79	शुभ "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
128	80	सौभाग्य "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
129	81	सुस्वर "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
130	82	आदेय नाम कर्म	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
131	83	यशःकीर्ति,,	10	14	13	14
132	84	स्थावर नामकर्म	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
133	85	सूक्ष्म नामकर्म	1	1	1	$9\frac{1}{9}$
134	86	अपर्याप्त नामकर्म	1	1	1	14
135	87	साधारण नामकर्म	1	1	1	$9\frac{1}{9}$

1	2	3	4	5	6	7
136	88	अस्थिर नाम कर्म	6	13	13	14 द्विचरम समय
137	89	अशुभ नाम कर्म	6	13	13	14 द्विचरम समय
138	90	दौर्भाग्य नाम कर्म	2	4	4	14 द्विचरम समय
139	91	दुःस्वर नाम कर्म	2	13	13	14 द्विचरम समय
140	92	अनादेय नाम कर्म	2	4	4	14 द्विचरम समय
141	93	अयशःकीर्ति नाम कर्म	6	4	4	14 द्विचरम समय
		गोत्रकर्म-2				
142	1	उच्च गोत्र	10	14	13	14 द्विचरम समय
143	2	नीचगोत्र	2	5	5	14 द्विचरम समय
		अन्तराय कर्म-5				
144	1	दानान्तराय	10	12	12	12
145	2	लाभान्तराय	10	12	12	12
146	3	भोगान्तराय	10	12	12	12
147	4	उपभोगान्तराय	10	12	12	12
148	5	वीर्यान्तराय	10	12	12	12

नोट :

(1) इस यंत्र में उपशम और क्षमक इस प्रकार दो श्रेणियों की विवक्षा ली गई है ।

(2) नाम कर्म की जिन प्रकृतियों की सत्ता चौदह गुणस्थान तक कही है, उनमें से मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर पर्याप्त, सौभाग्य, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थंकर नाम कर्म के सिवाय 71 प्रकृतियों की सत्ता चौदहवें गुणस्थान के द्विचरम समय तक होती है ।

10

तृतीय कर्मग्रंथ

बंधविहाण विमुक्कं, वंदिय सिरिवद्धमाण जिणचंदं ।
गइयाइसुं वुच्छं, समासओ बंध सामित्तं ।।1।।

शब्दार्थ

बंधविहाण=बंध विधान	**विमुक्कं=**विमुक्त
वंदिय=वंदन करके	**सिरिवद्धमाण=**श्री वर्धमान
जिणचंदं=जिनेश्वर में चंद्र समान	**गइयाइसु=**गति आदि में
वुच्छं=कहूंगा	**समासओ=**संक्षेप में
बंधसामित्तं=बंध स्वामित्व	

भावार्थ :

कर्मबंध के सभी प्रकारों से बंधनमुक्त बने जिनेश्वरों में चंद्र समान महावीर प्रभु को वंदन करके गति आदि 62 मार्गणाओं में बंध का स्वामित्व कहूंगा ।

विवेचन :

ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण अनिवार्य है । मंगलाचरण से विघ्नों का नाश होता है, जिसके फलस्वरूप प्रारंभ किए हुए कार्य की निर्विघ्न समाप्ति होती है ।

इस जगत् में प्रभु का नाम सर्वश्रेष्ठ मंगल है ।

आसन्न उपकारी होने के नाते ग्रंथकारश्री ने महावीर प्रभु को याद किया है । यद्यपि महावीर प्रभु तो अनंत गुणों के भंडार हैं, फिर भी प्रस्तुत में प्रभु के दो मुख्य गुणों का वर्णन कर प्रभु की विशेषताएँ बतलाई हैं ।

(1) संसारी जीव आठ कर्मों के बंधन से ग्रस्त होकर संसार में एक गति से दूसरी गति में चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं परंतु महावीर प्रभु ने तो संसार के मूल कर्मबंध का ही विच्छेद कर दिया है । कर्म के बंध के भेद-प्रभेद से प्रभु सर्वथा मुक्त बने हैं ।

संयम जीवन के स्वीकार के बाद अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा प्रभु आठों कर्मों से मुक्त हो चुके हैं ।

(2) ज्योतिष निकाय में चंद्र अत्यंत ही सौम्य व शीतल कहलाता है । राग-द्वेष से मुक्त होने से प्रभु चंद्र की तरह अत्यंत ही शीतल-शांत हैं ।

अवधि जिन आदि की अपेक्षा से प्रभु अत्यंत ही श्रेष्ठ हैं । तीर्थंकर नाम कर्म के उदय के फलस्वरूप प्रभु की सौम्यता-शीतलता अनेक जीवों को लाभ करनेवाली है ।

किसी भी वस्तु को सूक्ष्मता से जानने-समझने के लिए जो अलग-अलग द्वार हैं-उसी को मार्गणा कहते हैं ।

शास्त्र में गति आदि मार्गणाओं के मूल 14 भेद और 62 उत्तर भेद बतलाए गए हैं ।

इन 62 मार्गणाओं में रहे जीव कौन-कौनसी कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं-उसका वर्णन इस ग्रंथ में है-इस कारण इस ग्रंथ का नाम `बंध-स्वामित्व' रखा है ।

11 14 मार्गणाएँ

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।।2।।

शब्दार्थ

गइ=गति	**इंदिए=**इन्द्रियाँ
काए=काय	**जोए=**योग
वेए=वेद	**कसाय=**कषाय
नाणे=ज्ञान	**संजम=**संयम
दंसण=दर्शन	**लेसा=**लेश्या
भव=भव्य	**सम्मे=**सम्यक्त्व
सन्नि=संज्ञी	**आहारे=**आहारी

भावार्थ :

चौदह मूल मार्गणाएँ हैं-(1) गति (2) इन्द्रिय (3) काय (4) योग (5) वेद (6) कषाय (7) ज्ञान (8) संयम (9) दर्शन (10) लेश्या (11) भव्य (12) सम्यक्त्व (13) संज्ञी और (14) आहारी ।

विवेचन :

आत्मा के विकास के 14 गुणस्थानक है, उसी प्रकार यहाँ 14 मार्गणाएँ बतलाई हैं । इनके लक्षण इस प्रकार हैं–

(1) गति : गति नाम कर्म के उदय से होनेवाली जीव की पर्याय अथवा मनुष्य आदि भवों में जाने को गति कहते हैं । इसके चार भेद हैं ।

(2) इन्द्रिय : ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर भी आत्मा को पदार्थ का ज्ञान कराने में निमित्तभूत साधन को इन्द्रिय कहते हैं । अथवा जिसके द्वारा आत्मा को जाना जाय, उसे इन्द्रिय कहते हैं ।

(3) काय : जाति कर्म के उदय से होनेवाली आत्मा की पर्याय को काय कहते हैं ।

(4) योग : मन, वचन और काया के व्यापार को योग कहते हैं । शरीर नाम कर्म के उदय से मन वचन और काया से युक्त जीव की कर्म ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति को योग कहते हैं ।

(5) वेद : नोकषाय मोहनीय कर्म के उदय से इन्द्रिय रमणता की अभिलाषा को वेद कहते हैं ।

(6) कषाय : आत्मा के जन्म-मरणरूप संसार को जो बढ़ाए उसे कषाय कहते हैं ।

(7) ज्ञान : जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्याय को जीव जानता है उसे ज्ञान कहते हैं ।

(8) संयम : सावद्य पाप-प्रवृत्तियों से निवृत्त होना उसे संयम कहते हैं ।

(9) दर्शन : सामान्य और विशेष रूप पदार्थ के मात्र सामान्य अंश को ग्रहण करना, उसे दर्शन कहते हैं ।

(10) लेश्या : जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त हो उसे लेश्या कहते हैं ।

(11) भव्य : मोक्ष में जाने के लिए योग्य जीव को भव्य कहते हैं ।

(12) सम्यक्त्व : जिनेश्वर के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा करना, उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

(13) संज्ञी : आहार आदि विषय की अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं, जिसे संज्ञा हो उसे संज्ञी कहते हैं ।

(14) आहार : तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्‌गलों के ग्रहण को आहार कहते हैं ।

मार्गणाओं के उत्तर भेद

मार्गणा	भेद	स्वरूप
1. गतिमार्गणा	4	नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव
2. इन्द्रिय मार्गणा	5	एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय
3. काय मार्गणा	6	पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस
4. योग मार्गणा	3	मन, वचन, काय
5. वेद मार्गणा	3	पुरुष, स्त्री और नपुंसक
6. कषाय मार्गणा	4	क्रोध, मान, माया और लोभ
7. ज्ञान मार्गणा	8	मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, केवलज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान
8. संयम मार्गणा	7	सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति, अविरति
9. दर्शन	4	चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल
10. लेश्या	6	कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्ल
11. भव्य	2	भव्य, अभव्य
12. सम्यक्त्व	6	क्षायिक, उपशम, मिथ्यात्व, मिश्र सास्वादन, क्षायोपशमिक
13. संज्ञिमार्गणा	2	संज्ञी, असंज्ञी
14. आहार	2	आहारक, अनाहारक

प्रश्न : इन मार्गणाओं में ज्ञान मार्गणा नाम देकर अज्ञान का और संयम मार्गणा नाम देकर अविरति (असंयम) का समावेश क्यों किया है ?

उत्तर : (1) इन 14 मार्गणाओं में जगत् के सभी जीवों का समावेश करने का ध्येय होने से प्रतिपक्षभूत विपरीत मार्गणा का भी समावेश कर दिया गया है।

(2) आम की बाड़ी में नीम के दो-पाँच वृक्ष हों तो भी उसे आम की बाड़ी ही कहा जाता है, क्योंकि उस बाड़ी में आम के वृक्षों की ही बहुलता है, उसी प्रकार ज्ञान व संयम मार्गणाओं में ज्ञान व संयम की प्रधानता होने पर भी गौण रूप में अज्ञान-अविरति आदि का भी समावेश कर दिया है।

मार्गणाओं में गुणस्थान

1. गति : देव व नरक गति में चार गुणस्थानक, तिर्यंच में पाँच और मनुष्य में एक से चौदह गुणस्थानक हो सकते हैं ।

2. जाति : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय में पहले दो गुणस्थानक व पंचेन्द्रिय में एक से चौदह गुण स्थानक हो सकते हैं ।

3. काय : पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पहला-दूसरा गुणस्थान, तेउकाय, वायुकाय में पहला गुणस्थान व त्रसकाय में चौदह गुणस्थानक हो सकते हैं ।

4. योग : तीनों योगों में एक से तेरह गुणस्थानक हो सकते हैं ।

5. वेद : तीनों वेद में 1 से नौ गुणस्थानक होते है ।

6. कषाय : क्रोध, मान, माया में नौ व लोभ में दश गुणस्थानक होते है ।

7. ज्ञान : मति, श्रुत व अवधिज्ञान में 4 से 12 गुणस्थानक, मनःपर्यवज्ञान में 6 से 12 व केवलज्ञान में 13 व 14 दो गुणस्थानक होते है ।

8. संयम : सामायिक व छेदोपस्थापनीय में 6 से 9 गुणस्थानक, परिहार विशुद्धि में 6 व 7, सूक्ष्म संपराय में 10 वां, तथा यथाख्यात में 11 से 14 गुणस्थानक होते है ।

9. दर्शन : चक्षुदर्शन व अचक्षुदर्शन में 1 से 12 गुण स्थानक अवधिदर्शन में 4 से 12 गुणस्थानक व केवलदर्शन में 13 व 14 गुणस्थानक होते है ।

10. लेश्या : कृष्ण, नील व कापोत लेश्या में 1 से 6 गुण स्थानक तेजोलेश्या व पद्मलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक व शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक होते है ।

11. भव्य : भव्य को 1 से 14 व अभव्य को पहला ही गुणस्थानक होता है ।

12. सम्यक्त्व : उपशम सम्यक्त्व में 4 से 11 तक, क्षायिक में 4 से 14 तथा क्षयोपशमिक में 4 से 7 गुण स्थानक होते है ।

13. संज्ञी : संज्ञी में 1 से 14 गुणस्थानक व असंज्ञी में पहले दो गुणस्थानक होते है ।

14. आहार : आहार में 1 से 13 व अनाहारक में 1,2,4,13 व 14 वां ये पांच गुणस्थानक होते है ।

जिण सुरविउवाहारदु देवायु य निरय सुहुम विगलतिगं ।
एगिंदि थावरायव नपु-मिच्छं-हुंड-छेवट्ठं ।।3।।
अण मज्झागिइ संघयण कुखगइ नियइत्थि दुहग थीणतिगं ।
उज्जोय तिरिदुगं, तिरि नराउ नर उरल दुगं रिसहं ।।4।।

शब्दार्थ

जिण=तीर्थंकर नामकर्म
देवाउय=देव आयुष्य
सुहुम=सूक्ष्म
तिगं=त्रिक
थावरायव=स्थावर-आतप
मिच्छं=मिथ्यात्व
छेवट्ठं=सेवार्त संघयण
मज्झागिइ=मध्य के चार संस्थान
कुखगइ=अशुभ विहायोगति
इत्थि=स्त्री वेद
थीणतिगं=थीणद्धि त्रिक
तिरिदुगं=तिर्यंच द्विक
नर=मनुष्य
रिसह=वज्र ऋषभ नाराच
सुरविउव्वाहारदु=देवद्विक,वैक्रियद्विक, आहरकद्विक
निरय=नरक
विगल=विकलेन्द्रिय
एगिंदिय=एकेन्द्रिय जाति
नपु=नपुंसक वेद
हुंड=हुंडक
अण=अनंतानुबंधी
संघयण=संघयण
निय=नीच गोत्र
दुहग=दौर्भाग्य
उज्जोय=उद्योत
तिरिनराउ=तिर्यंच-मनुष्य आयु
उरल दुगं=औदारिकद्विक

भावार्थ :

जिन नाम, सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक देवायु नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रिय, स्थावरनाम, आतपनाम, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संघयण चतुष्क, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्री वेद, दुर्भगत्रिक, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक औदारिकद्विक और वज्रऋषभ नाराच संघयण ये 55 प्रकृतियाँ, बंध-स्वामित्व बताने में सहायक होने से यहाँ क्रमशः बतलाई है ।

विवेचन :

गुणस्थानकों में बंध योग्य 120 प्रकृतियाँ हैं । इन दो गाथाओं में 55 प्रकृतियों का संग्रह किया गया है । यहाँ संकेत द्वारा अन्य-अन्य प्रकृतियों का संग्रह किया है । जिससे आगे बंध योग्य सभी प्रकृतियों का उल्लेख न कर पहली प्रकृति का नाम लिखकर बाद में संख्या देकर उनका भी संग्रह कर लिया है ।

उदा. `सुरइगुणवीस' इस पद से देवद्विक से लेकर आगे की 19 प्रकृतियों का संग्रह किया है ।

संग्रह की गई प्रकृतियाँ

1. तीर्थंकर नाम कर्म
2. **देवद्विक**=देवगति, देवानुपूर्वी
3. **वैक्रियद्विक**=वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग
4. **आहारकद्विक**=आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग
5. देवायु
6. **नरकत्रिक**=नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरक आयुष्य
7. **सूक्ष्मत्रिक**=सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणनाम
8. **विकलत्रिक**=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
9. एकेन्द्रियजाति
10. स्थावर
11. आतप नामकर्म
12. नपुंसक वेद
13. मिथ्यात्व मोहनीय
14. हुंडक संस्थान
15. सेवार्त संघयण
16. **अनंतानुबंधी चतुष्क**-अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ.
17. **मध्यम संस्थान चतुष्क**-न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन, कुब्ज.

18. मध्यम संघयण चतुष्क-ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलिका संघयण ।
19. अशुभ विहायोगति
20. नीच गोत्र
21. स्त्री वेद
22. **दुर्भगत्रिक**-दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय नाम कर्म
23. **स्त्यानर्द्धित्रिक**-निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि
24. उद्योत
25. **तिर्यंचद्विक**-तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी
26. तिर्यंच आयुष्य
27. मनुष्य आयुष्य
28. **मनुष्यद्विक**-मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी
29. **औदारिकद्विक**-औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग
30. वज्रऋषभ नाराच संघयण

सुर इगुणवीसवज्जं, इगसउ ओहेण बंधहिं निरया ।
तित्थविणा मिच्छि सयं, सासणि नपुचउ विणा छन्नुई ।।5।।

शब्दार्थ

सुर=देवद्विक आदि	**इगुणवीस**=उन्नीस
वज्जं=छोड़कर	**इगसउ**=एक सौ एक
ओहेण=ओघ से	**बंधहिं**=बाँधता है
निरया=नरक जीव	**तित्थ**=तीर्थंकर नामकर्म
विणा=बिना	**मिच्छि**=मिथ्यात्व में
सयं=सौ	**सासणि**=सास्वादन में
नपुचउ=नपुंसक चतुष्क	**छन्नुई**=छियानवे

भावार्थ :

बंध योग्य 120 प्रकृतियों में से सुरद्विक आदि 19 प्रकृतियों को छोड़कर नारक जीव 101 प्रकृतियों को सामान्य से बाँधते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थान में रहा नारक जीव तीर्थंकर नामकर्म को छोड़ 100 प्रकृतियों को तथा सास्वादन गुणस्थानक में नपुंसक चतुष्क को छोड़ 96 प्रकृतियों को बाँधते हैं ।

विवेचन :

चौदह मार्गणाओं में सर्व प्रथम गति मार्गणा है । गति मार्गणा में सर्व प्रथम नरक गति संबंधी वर्णन करते हैं । नरक भी 7 हैं । चौथी नरक से आगे की नरकों के बंध-स्वामित्व की बात आगे की गाथाओं में होने से यहाँ सर्व प्रथम पहली तीन नरकों के बंध स्वामित्व की बात करते हैं ।

पहली तीन नरक पृथ्वी के नारक सामान्य से 101 कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

पहली तीन नरक में से निकले हुए नारक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य का भव ही प्राप्त करते हैं, शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य व देव-नरक के भव को प्राप्त नहीं करते हैं, अतः उन भवों में गमन योग्य 19 प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं ।

वे (1) देवगति (2) देवानुपूर्वी (3) वैक्रियशरीर (4) वैक्रिय अंगोपांग (5) आहारक शरीर (6) आहारक अंगोपांग (7) देवायु (8) नरकगति (9) नरकानुपूर्वी (10) नरकायु (11) सूक्ष्मनाम (12) अपर्याप्त नाम (13) साधारणनाम (14) द्वीन्द्रिय जाति (15) त्रीन्द्रिय जाति (16) चतुरिन्द्रिय जाति (17) एकेन्द्रियजाति (18) स्थावर नाम (19) आतप नाम-इन प्रकृतियों को छोड 101 कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

नरक के जीव देव व नरक में पैदा नहीं होते हैं अतः देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी और नरक आयु का बंध नहीं करते हैं ।

सूक्ष्म नाम कर्म का उदय सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को, अपर्याप्त नामकर्म का उदय अपर्याप्त तिर्यंच-मनुष्य को तथा साधारण नामकर्म का उदय साधारण वनस्पति को होता है ।

एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतपनाम ये तीन प्रकृतियाँ एकेन्द्रिय

प्रायोग्य तथा विकलेन्द्रिय त्रिक विकलेन्द्रिय प्रायोग्य है-ये छह प्रकृतियाँ भी नारक जीव नहीं बाँधते हैं ।

आहारक द्विक का उदय चारित्रधर लब्धिधारी चौदहपूर्वी को ही होता है ।

नारक के जीवों को 1 से 4 गुणस्थानक होते हैं । तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यक्त्व की उपस्थिति में ही होता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानक में उसका बंध नहीं होता है, अतः वहाँ 100 ही प्रकृतियों का बंध होता है ।

दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में रहा नारक जीव नपुंसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडक व सेवार्त संघयण-इन चार प्रकृतियों को नहीं बाँधते हैं, क्योंकि इन चार प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व के उदयकाल में होता है । अतः सास्वादन गुणस्थानक में 96 प्रकृतियों का बंध होता है ।

विणु अणछवीस मीसे, बीसयरि सम्मंमि जिणनराउ जुया ।
इय रयणाइसु भंगो, पंकाइसु तित्थयरहीणो ।।6।।

शब्दार्थ

विणु=बिना	**अणछवीस**=अनंतानुंबधी आदि 26 प्रकृतियां
मीसे=मिश्र	**बीसयरि**=बहोत्तर
सम्मंमि=सम्यक्त्व में	**जिण**=तीर्थंकरनाम कर्म
नराउ जुया=मनुष्य आयुष्य युत	**जुया**=सहित
इय=इस प्रकार	**रयणाइसु**=रत्नप्रभा आदि में
भंगो=विकल्प	**पंकाइसु**=पंक आदि में
तित्थयरहीणो=तीर्थंकरनाम बिना	

भावार्थ :

अनंतानुबंधी चतुष्क आदि छब्बीस प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुण-स्थान मे सत्तर तथा तीर्थंकरनाम व मनुष्य आयुष्य जोड़ने पर सम्यक्त्व गुण स्थान में बहत्तर प्रकृतियों का बंध होता है ।

इस प्रकार नरक गति की यह सामान्य बंधविधि रत्नप्रभा आदि तीन

नरक भूमियों के नारकों के चारों गुणस्थान में भी समझना चाहिए तथा पंकप्रभा आदि नरकों में तीर्थंकर नामकर्म के बिना शेष सामान्य बंधविधि पूर्ववत् समझनी चाहिए ।

विवेचन :

मिश्र गुणस्थान में रहे नारकों को 70 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय के उदय से बँधनेवाली 25 प्रकृतियाँ-अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संघयण चतुष्क, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत तथा तिर्यंच त्रिक का बंध नहीं होता है ।

तीसरे गुणस्थानक में किसी भी आयुष्य का बंध नहीं होता हैं, अतः मनुष्य आयुष्य भी नहीं बांधता है ।

इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम करने पर 70 प्रकृतियाँ बचती हैं । अतः मिश्र गुणस्थान में 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म का भी बंध हो सकता है और मनुष्य आयुष्य का भी । इस प्रकार इन प्रकृतियों को जोडने से चौथे गुणस्थानक में 70 + 2 = 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे गुणस्थानक में रहे जीव मनुष्य आयुष्य का ही बंध करते हैं । नरक के जीव नरक व देवायु का कभी बंध नहीं करते हैं । अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर नरक के जीव तिर्यंच आयुष्य का बंध कर सकते हैं, परंतु उस कषाय का उदय दो गुणस्थानक तक ही होता है, अतः चौथे गुणस्थानक में सिर्फ मनुष्य आयुष्य का ही बंध होता है ।

इस प्रकार नरकगति में पहले गुणस्थानक में 100 कर्म प्रकृति, दूसरे गुणस्थानक में 96, तीसरे गुणस्थानक में 70 व चौथे गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का बंध सामान्य से कहा गया है ।

नरक 7 हैं, उनमें प्रथम तीन नरक रत्न प्रभा, शर्कराप्रभा व बालुका प्रभा में तो इसी प्रकार से बंध होता है ।

अब पंकप्रभा, धूमप्रभा तथा तमः प्रभा इन तीन नरकों में बंध की

प्रकृतियाँ बतलाते है । पंक प्रभा आदि चौथी, पाँचवीं व छठी नरक में रहे नारक चौथे गुणस्थानक में होने पर भी तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं । अतः उन्हें प्रथम तीन गुणस्थानकों में तो 100, 96 व 70 प्रकृतियों का बंध होता है, परंतु चौथे गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म के बंध का अभाव होने से 71 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

अजिणमणुआउ ओहे, सत्तमिए नरदुगुच्चविणु मिच्छे ।
इगनवई सासणे तिरिआउ नपुंस चउवज्जं ।।7।।
अणचउवीस विरहिया, सनरदुगुच्चा य सयरि मीसदुगे ।
सतरसओ ओहि मिच्छे, पज्जतिरिया विणु जिणाहारं ।।8।।

शब्दार्थ

अजिण=तीर्थंकरनाम सिवाय	**मणुआउ=**मनुष्य आयुष्य
ओहे=ओघ से	**सत्तमिए=**सातवीं नरक में
नरदुग=मनुष्य द्विक	**उच्चविणु=**उच्च गोत्र बिना
मिच्छे=मिथ्यात्व में	**इगनवई=**इक्यानवे
सासणे=सास्वादन में	**तिरिआउ=**तिर्यंच आयु
नपुंस=नपुंसक	**चउवज्जं=**चार को छोड़कर
अण=अनंतानुंबंधी	**चउवीस=**चौबीस
विरहिया=छोड़कर	**सनरदुग=**मनुष्यद्विक सहित
उच्चा=उच्च गोत्र	**सयरि=**सौ
मीसदुगे=मिश्रद्विक	**सतरसओ=**एकसौ सत्रह
ओहि=ओघ	**मिच्छे=**मिथ्यात्व में
पज्जतिरिया=पर्याप्त तिर्यंच	**विणु=**बिना
जिण=तीर्थंकरनाम	**आहारं=**आहारक

भावार्थ :

सातवीं नरक में सामान्य से तीर्थंकरनाम कर्म और मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं होता है । मनुष्य द्विक और उच्च गोत्र के बिना शेष प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थानक में बंध होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यंच आयु व नपुंसक चतुष्क के बिना 91

प्रकृतियों का बंध होता है तथा 91 प्रकृतियों में से अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 24 प्रकृतियों को कम करने पर और मनुष्य द्विक एवं उच्च गोत्र इन तीन प्रकृतियों को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान सम्यक्त्व गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तिर्यंच गति में पर्याप्त तिर्यंच मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकरनाम कर्म एवं आहारक द्विक को छोड़ सामान्य से 117 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

विवेचन :

छह नरकों के बंध स्वामित्व का वर्णन करने के बाद इन दो गाथाओं में सातवीं नरक एवं पर्याप्त तिर्यंच के बंध स्वामित्व का वर्णन कर रहे हैं ।

सातवीं नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य भव को प्राप्त नहीं करता है, अतः वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले तो भी मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं करता है । तीन के बाद नरक के जीव तीर्थंकर नाम कर्म भी नहीं बाँधते हैं, अतः 7वीं नरक के जीव सामान्य से 99 प्रकृतियों का बंध माना गया है ।

सातवीं नरक के जीव मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्र का बंध नहीं करते हैं, अतः ये तीन प्रकृतियाँ कम करने पर 99 - 3 = 96 प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व गुणस्थानक में होता है ।

दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यंच आयु तथा नपुंसक चतुष्क-नपुंसक वेद, मिथ्यात्व, हुंडक व सेवार्त संघयण-इन पाँच का बंध नहीं करते हैं अतः 96 - 5 = 91 प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

सातवीं नरक के जीव तीसरे व चौथे गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

अनंतानुबंधी चतुष्क से लेकर तिर्यंच द्विक तक 24 प्रकृतियाँ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन और कुब्ज संस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्ध नाराच और कीलिका संघयण, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी का बंध अनंतानुबंधी कषाय के उदय में ही होता है और अनंतानुबंधी का उदय पहले-दूसरे गुण स्थान में ही होता है ।

91 में से 24 घटाने पर 67 प्रकृतियाँ रहती हैं । उनमें मनुष्य द्विक

(मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी) तथा उच्च गोत्र जोड़ने पर 67 + 3 = 70 प्रकृतियों का बंध तीसरे-चौथे गुणस्थानक में होता है ।

प्रश्न : सातवीं नरक के जीव मरकर मनुष्य के रूप में पैदा नहीं होते हैं तो वे मनुष्य द्विक व उच्चगोत्र क्यों बाँधते हैं ?

उत्तर : मनुष्य गति (तथा आनुपूर्वी) और मनुष्य आयुष्य में बड़ा अंतर है । किसी भी गति का आयुष्य बंधा हो तो उस गति में जाना ही पड़ता है, परंतु मनुष्य गति नाम कर्म बंधा हो तो मनुष्य गति में जाना पड़े ऐसा नियम नहीं है ।

नरक गति के बंध-स्वामित्व के बाद अब तिर्यंचगति का बंध-स्वामित्व बतलाते हैं-

तिर्यंचों के दो भेद हैं-पर्याप्त तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच ।

यहाँ सर्वप्रथम पर्याप्त तिर्यंचों का बंध स्वामित्व कहते हैं ।

तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक-इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, अतः सामान्य से तिर्यंचों को 117 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हो तो भी तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं तथा आहारक द्विक का बंध सर्वविरतिधर आत्मा ही कर सकती है, तिर्यंच में सर्वविरति का अभाव है, अतः आहारक द्विक का बंध नहीं होता है ।

पर्याप्त तिर्यंच को पहले से पांचवें तक के गुणस्थानक और अपर्याप्त तिर्यंच को सिर्फ पहला ही गुणस्थानक होता है ।

विणु निरय सोल सासणि सुराउ अण एगतीस विणु मीसे ।
ससुराउ सयरि सम्मे बीयकसाए विणा देसे ।।9।।

शब्दार्थ

विणु=बिना
सासणि=सास्वादन में
अणएगतीस=अनंतानुबंधी आदि 31
मीसे=मिश्र में
सयरि=सत्तर
बीयकसाए=दूसरे कषाय में
देसे=देश विरति में
निरयसोल=नरकद्विक आदि सोलह
सुराउ=देव आयुष्य
विणु=बिना
ससुराउ=देव आयु सहित
सम्मे=सम्यक्त्व में
विणा=बिना

भावार्थ :

सास्वादन गुणस्थान में नरक त्रिक आदि सोलह प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुणस्थान में देवायु और अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 31 को छोड़कर सम्यक्त्व गुणस्थान में देव आयुष्य सहित सत्तर तथा देशविरति गुणस्थान में दूसरे कषाय के बिना 66 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

विवेचन :

पर्याप्त तिर्यंचों को दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व से बँधनेवाली 16 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

नरक त्रिक (नरक गति, नरकानुपूर्वी और नरकायुष्य) जाति चतुष्क (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय), स्थावर चतुष्क (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण) हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, आतप नाम, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व मोहनीय-इन 16 प्रकृतियों को कम करने से 117 – 16 = 101 प्रकृतियों का बंध होता है । तीसरे गुणस्थान में आयुष्य का बंध नहीं होने से पर्याप्त तिर्यंच देवायु का बंध नहीं करते हैं । तीसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय का उदय नहीं होने से उसके निमित्त से बँधनेवाली 25 प्रकृतियाँ-

(तिर्यंचत्रिक-तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंच आयु) स्त्यानर्द्धित्रिक-निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि ।)

दुर्भगत्रिक-दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय नाम

अनंतानुबंधी चतुष्क-अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ

मध्यमसंस्थान चतुष्क-न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन और कुब्ज

मध्यम संघयण चतुष्क-ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका संघयण ।

नीच गोत्र, उद्योत नाम, अशुभ विहायोगति और स्त्रीवेद का बंध नहीं करते हैं ।

इसके साथ ही मनुष्य गति योग्य मनुष्यत्रिक-मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्य आयुष्य, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रऋषभ नाराच संघयण इन छह का भी बंध नहीं करते हैं ।

इस प्रकार 1 + 25 + 6 = 32 प्रकृतियों का बंध कम करने पर 101-32 = 69 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के चौथे गुणस्थानक में देवायु का बंध संभव होने से 69 + 1 = 70 का बंध होता है ।

पाँचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण कषाय क्रोध, मान, माया और लोभ का बंध नहीं होने से 70 – 4 = 66 प्रकृतियों का बंध होता है ।

इय चउ गुणेसु वि नरा, परमजया सजिण ओहु देसाई ।
जिण इक्कारस हीणं, नवसय अपजत्ततिरियनरा ।।10।।

शब्दार्थ

इय=इस प्रकार	**चउ गुणेसु=**चार गुणस्थानों में
वि=भी	**नरा=**मनुष्य
परं=परंतु	**अजया=**अविरति गुणस्थानक
सजिण=तीर्थंकर नाम सहित	**ओहु=**ओघ से
देसाई=देशविरति आदि	**जिणइक्कारस=**तीर्थंकर नाम आदि 11
हीणं=रहित	**नवसय=**एकसौ नौ
अपजत्त=अपर्याप्त	**तिरियनरा=**तिर्यंच-मनुष्य

भावार्थ :

पर्याप्त मनुष्य पहले से चौथे गुणस्थानक में तिर्यंच की तरह ही कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं । सिर्फ सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति बाँध सकते हैं-पर्याप्त तिर्यंच नहीं ।

पाँचवें से आगे के गुणस्थानों में कर्मस्तव नाम के दूसरे कर्मग्रंथ में बताए अनुसार कर्म प्रकृतियाँ बाँधते हैं ।

अपर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य तीर्थंकरनाम आदि 11 प्रकृतियों को छोडकर 109 का बंध करते हैं ।

विवेचन :

पर्याप्त मनुष्य पहले गुणस्थानक में आहारकद्विक व तीर्थंकर नामकर्म को छोड़कर 117 प्रकृतियों का बंध करते हैं । दूसरे गुणस्थान में 16 प्रकृतियों

का अंत हो जाने से 117 – 16 = 101 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

तीसरे गुणस्थानक में 32 प्रकृतियाँ कम हो जाने से 69 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

चौथे गुणस्थानक में देवायु के साथ तीर्थंकर नामकर्म के बंध की संभावना होने से 69 + 2 = 71 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

पाँचवें गुणस्थान में पर्याप्त मनुष्य 67 प्रकृतियों का एवं पर्याप्त तिर्यंच 66 प्रकृतियों का बंध करते है ।

पाँचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क कम हो जाता है ।

लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य को पहला ही मिथ्यात्व गुण स्थानक होता है ।

लब्धि अपर्याप्त पहले गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म, देवद्विक, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक, देव आयु और नरक त्रिक-इन ग्यारह प्रकृतियों को नहीं बाँधते हैं, अतः 120 – 11 = 109 प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

पांचवें गुणस्थानक से आगे के गुणस्थानकों में द्वितीय कर्मग्रंथ के अनुसार सामान्य से जो बंध कहा गया है, वह पर्याप्त मनुष्य को समझना चाहिए, क्योंकि आगे के सभी गुणस्थानक पर्याप्त मनुष्य को ही होते हैं ।

छठे गुणस्थानक में 63, सातवें गुण स्थानक में 59-58 ।

निरयव्व सुरा नवरं, ओहे मिच्छे इगिंदि तिग सहिया ।
कप्पदुगे वि य एवं, जिणहीणो जोइ भवणवणे ।।11।।

शब्दार्थ

निरयव्व=नारक की तरह	**सुरा=**देव
नवरं=परंतु	**ओहे=**सामान्य से
मिच्छे=मिथ्यात्व में	**इगिंदि=**एकेन्द्रिय
तिगसहिया=त्रिक सहित	**कप्पदुगे=**दो देवलोक में
वि=भी	**एवं=**इस प्रकार
जिणहीणो=तीर्थंकरनाम छोड	**जोइ=**ज्योतिष
भवण=भवनपति	**वणे=**व्यंतर में

भावार्थ :

देवों को नरकगति की तरह बंध होता है, परंतु सामान्य से व मिथ्यात्व गुणस्थान में एकेन्द्रिय त्रिक सहित बंध होता है। प्रथम दो देवलोक - सौधर्म व ईशान में इस तरह बंध होता है तथा ज्योतिष, भवनपति और व्यंतर में तीर्थंकर नामकर्म सिवाय बंध होता है ।

विवेचन :

नरक के जीव मरकर देवगति और नरकगति में उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार देवता भी मरकर देव व नरक गति में पैदा नहीं होते हैं ।

देवों के मुख्य चार भेद हैं-भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक।

बंध स्वामित्व में देवों के 5 विभाग होते हैं-

(1) भवनपति, व्यंतर और ज्योतिषदेव

(2) पहला व दूसरा वैमानिक देवलोक । इन दो विभाग का बंध-स्वामित्व उपर्युक्त गाथा में बतलाया है ।

सौधर्म और ईशान देवलोक के दो देवलोक का बंध नरकगति के समान है, परंतु एकेन्द्रिय त्रिक सहित का बंध होता है ।

पहले दो देवलोक तक के देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी पैदा होते हैं ।

अतः सामान्य से पहले दो देवलोक के देवता एकेन्द्रियत्रिक जोड़ने पर 101 + 3 = 104 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म बंध नहीं होने से 103 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व के उदय से बँधनेवाली सात प्रकृतियों का बंध नहीं होने से 96 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

तीसरे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 26 प्रकृतियों को कम करने से 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और मनुष्य आयु का बंध होने से 70 + 2 = 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

भवनपति, व्यंतर और ज्योतिष के देव तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं, अतः उन्हें सामान्य से बंध योग्य 103 प्रकृतियाँ होती हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थान में 103 प्रकृतियों का बंध होता है, दूसरे गुणस्थानक में 96, तीसरे गुणस्थान में 70 व चौथे गुणस्थान में 71 प्रकृतियों का बंध होता है ।

रयणव्व सणंकुमाराई, आणयाई उज्जोय चउरहिया ।
अपज्जतिरियव्व नवसयमिगिंदि पुढवीजल तरु विगले ।।12।।

शब्दार्थ

रयणव्व=रत्नप्रभा की तरह	**सणंकुमाराई=**सनतकुमार आदि
आणयाई=आनत आदि	**उज्जोय=** उद्योत
चउरहिया=चतुष्क रहित	**अपज्ज=**अपर्याप्त
तिरियव्व=तिर्यंच की तरह	**नवसयं=**एकसौ नौ
इगिंदि=एकेन्द्रिय	**पुढवी=**पृथ्वीकाय
जल=अप्काय	**तरु=**वनस्पतिकाय
विगले=विकलेन्द्रिय	

भावार्थ :

सनतकुमार आदि देवता रत्नप्रभा नारकी की तरह बंध करते हैं ।

आनत आदि देवता उद्योत चतुष्क रहित बंध करते हैं । एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीव अपर्याप्त तिर्यंच की तरह बंध करते हैं ।

विवेचन :

तीसरे वैमानिक सनतकुमार से लेकर आठवें आनत तक के देवलोक के देवताओं को रत्नप्रभा नारक की तरह ही पहले से चारों गुणस्थानकों में बंध होता है ।

लेश्या की विशुद्धि के कारण ये देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय या वनस्पतिकाय में उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः पहले दो देवलोक की तरह एकेन्द्रियत्रिक का बंध नहीं करते हैं ।

वे सामान्य से 101, मिथ्यात्व में 100, दूसरे सास्वादन में 96, मिश्र में 70 और चौथे गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

नौवें आनत से ऊपर के देवता मरकर मनुष्य गति में ही जन्म लेते हैं, अतः तिर्यंचगति प्रायोग्य, उद्योत चतुष्क-उद्योत नाम कर्म, तिर्यंच गति तिर्यंचानुपूर्वी और तिर्यंच आयुष्य का बंध नहीं करते हैं ।

अतः आनत से नौ ग्रैवेयक तक के देवता सामान्य से 97, मिथ्यात्व में 96, सास्वादन में 92, मिश्र में 70 व अविरत गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का ही बंध होता हैं ।

पाँच अनुत्तर में पैदा होनेवाले देवता नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं अतः चौथे गुणस्थानक में उन्हें 72 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

12 5 इन्द्रिय व 6 काय मार्गणा

इन्द्रिय मार्गणा के 5 भेद हैं- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।

काय मार्गणा के 6 भेद हैं-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।

इन 11 मार्गणाओं में से प्रथम एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय आदि चार तथा पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय आदि तीन अर्थात् इन 7 मार्गणाओं में अपर्याप्त तिर्यंच के समान सामान्य से 109 प्रकृतियों का बंध होता है । क्योंकि ये जीव भी मरकर देवगति व नरकगति में उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः तीर्थंकर नामकर्म, देवगति, देवानुपूर्वी, देव आयुष्य नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरक आयुष्य, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग इन ग्यारह प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं ।

छ नवइ सासणि विणु सुहुमतेर केइ पुण बिंति चउनवइ ।
तिरिय नराऊहिं विणा, तणु पज्जत्तिं न जंति जओ ।।13।।

शब्दार्थ

छ नवइ=छियानवे	**सासणि=**सास्वादन में
विणु=बिना	**सुहुमतेर=**सूक्ष्म आदि तेरह
केइ=कुछ	**पुण=**पुनः
बिंति=कहते हैं	**चउनवइ=**चोरानवे
तिरिय=तिर्यंच	**नराऊहिं=**मनुष्य आयुष्य
विणा=बिना	**तणुपज्जतिं=**शरीर पर्याप्ति
न जंति=पूर्ण नहीं करते हैं	**जओ=**क्योंकि

भावार्थ :

सात मार्गणावाले जीव सूक्ष्म आदि तेरह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 96 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

कुछ आचार्यों के मतानुसार तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य के बिना सास्वादन में 94 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि सास्वादन में वे जीव शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते हैं ।

विवेचन :

एकेन्द्रिय आदि चार तथा पृथ्वीकाय आदि तीन इन सात मार्गणाओं में जीव मिथ्यात्व गुणस्थानक में 109 प्रकृतियों का बंध करते हैं, उसमें से सूक्ष्म नाम कर्म आदि 13 प्रकृति कम करने पर 96 प्रकृतियों का बंध होता है ।

कुछ आचार्यों के मत से सास्वादन गुणस्थानक में 94 का ही बंध होता है ।

उनका मत है कि इन सात वर्गणाओं में रहा जीव नया उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करता है । अतः सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त नहीं करता है, परंतु गत भव में उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के पहले इन सात मार्गणाओ में से किसी भव का आयुष्य बाँध दिया हो, और फिर उपशम

सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो उसका वमन कर चौथे गुणस्थान से सास्वादन गुणस्थान में जाय और वहाँ उस भव का आयुष्य पूर्ण कर मृत्यु प्राप्त कर उपर्युक्त सात मार्गणाओं में सास्वादन लेकर जाए तो पूर्व भव से लाया सास्वादन इन सात मार्गणाओं में हो सकता है ।

उस सास्वादन का काल सिर्फ छह आवलिका का है । प्रथम आहार पर्याप्ति एक समय में व शेष पर्याप्तियाँ अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती हैं । सास्वादन का काल तो अल्प होने से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले ही वह गुणस्थानक चला जाता है । परभव का आयुष्य तो आहार-शरीर व इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही बँधता है, अतः जब सास्वादन गुणस्थान हो तब आयुष्य बंध नहीं व आयुष्य बंधे तब सास्वादन का काल पूर्ण हो जाता है, अतः इन सात मार्गणाओं में तिर्यंच व मनुष्य के आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

सूक्ष्म निगोद में भी जघन्य क्षुल्लक भव 256 आवलिका का होता है उसमें दो तृतीयांश भाग बीतने पर ही आयुष्य का बंध होता है । जब कि सास्वादन का काल तो छह आवलिका का ही है । अतः इस गुणस्थानक में आयुष्य बंध नहीं होता है ।

ओहु पणिंदि तसे, गइतसे जिणिक्कार नरतिगुच्च विणा ।
मणवयजोगे ओहो, उरले नरभंगु तम्मिस्से ।।14।।

शब्दार्थ

ओहु=ओघबंध	**पणिंदि=**पंचेन्द्रिय
तसे=त्रस मार्गणा	**गइतसे=**गतित्रस में
जिणिक्कार=तीर्थंकर नाम आदि	**नरतिगुच्च=**मनुष्य त्रिक-उच्च गोत्र
विणा=बिना	**मणवयजोगे=**मन वचन योग में
ओहो=सामान्य बंध	**उरले=**औदारिक मार्गणा में
नरभंगु=मनुष्य की तरह	**तम्मिस्से=**उसके मिश्र में

भावार्थ :

पंचेन्द्रिय जाति और त्रस काय मार्गणा में सामान्य से ओघ बन बंध होता है ।

गति त्रस (तेउकाय-वायुकाय) में जिननाम आदि ग्यारह तथा मनुष्य त्रिक व उच्चगोत्र बिना शेष 105 का बंध होता है ।

मनयोग व वचन योग में ओघ से बंध होता है । औदारिक काययोग में मनुष्य के समान बंध होता है । औदारिक मिश्र में आगे कहते हैं ।

विवेचन :

जाति मार्गणा में एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के बंध का वर्णन हो गया, अब पंचेन्द्रिय जाति का वर्णन करते हैं । पंचेन्द्रिय जाति तथा काय मार्गणा में त्रस काय में दूसरे कर्म ग्रंथ में सामान्य से बताए बंध के अनुसार बंध होता है अर्थात् सामान्य से 120, मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101, मिश्र में 74, अविरत में 77, देशविरति में 67, प्रमत्त में 58-59, अपूर्व करण में 58-56-26 अनिवृत्तिकरण में 22-21-20-19-18 सूक्ष्म संपराय में 17, उपशांत मोह-क्षीण मोह व सयोगी में 1 प्रकृति का बंध होता है ।

तेउकाय और वायुकाय वास्तव में स्थावर ही कहलाते हैं फिर भी उन्हें अनिच्छा से गति होने के कारण वे गतित्रस कहलाते हैं ।

ये गतित्रस मरकर सिर्फ तिर्यंच गति में ही जन्म लेते हैं । अन्य स्थावर मरकर मनुष्य गति में भी आ सकते हैं, परंतु इनके लिए निषेध है ।

ये गतित्रस एकेन्द्रिय होने के कारण सम्यक्त्व व संयम भी प्राप्त नहीं करते हैं, अतः वे जिननाम आदि 11 एवं मनुष्यत्रिक व उच्च गोत्र का भी बंध नहीं करते हैं, अतः वे मिथ्यात्व में सिर्फ 120 – 15 = 105 प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

13 योग मार्गणा में बंध-स्वामित्व

योग के मुख्य तीन भेद हैं-मनोयोग, वचनयोग और काययोग ।

मनोयोग और वचनयोग के 4-4 भेद है, जबकि काययोग के 7 भेद हैं ।

मनोयोग और मनोयोग सहित वचनयोग में 1 से 13 तक गुणस्थानक होते हैं । उनमें दूसरे कर्म ग्रंथ के अनुसार सामान्य से जो बंध योग्य प्रकृतियाँ बतलाई हैं, वे समझनी चाहिए ।

मनोयोग रहित वचनयोग में विकलेन्द्रिय के समान और मनो-वचन रहित सिर्फ काययोग में एकेन्द्रिय के समान बंध-स्वामित्व समझना चाहिए ।

विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय में क्रमशः सामान्य से 109, मिथ्यात्व में 109, सास्वादन में 96 अथवा 94 का बंध बतलाया है । उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए ।

आहार छग विणोहे चउदस सउ मिच्छि जिणपणगहीणं ।
सासणि चउनंवइ विणा, तिरिअनराऊ सुहुमतेर ।।15।।

शब्दार्थ

आहार छग=आहारक षट्क	**विणोहे=**बिना ओघ से
चउदस सउ=एक सौ चौदह	**मिच्छि=**मिथ्यात्व में
जिण पणग=जिन पंचक	**हीणं=**हीन
सासणि=सास्वादन में	**चउनंवइ=**चौरानवे
तिनिअनर=मनुष्य तिर्यंच	**आऊ=**आयुष्य
सुहुमतेर=सूक्ष्म तेरह	

भावार्थ :

औदारिक मिश्रकाय योग में आहारक षट्क के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म आदि पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 109 का बंध होता है और सास्वादन में मनुष्य-तिर्यंच आयुष्य तथा सूक्ष्म आदि तेरह के बिना 94 प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :

जन्म के प्रथम समय में जीव कार्मणयोग द्वारा आहार ग्रहण करता है, उसके बाद औदारिक काय योग प्रारंभ होता है, वह योग शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक कार्मण के साथ मिश्र होता है ।

केवली समुद्घात में दूसरे, छठे व सातवें समय में भी कार्मण के साथ औदारिक मिश्र योग होता है ।

औदारिक मिश्र काययोग मनुष्य व तिर्यंचों को अपर्याप्त अवस्था में व केवली समुद्घात समय होता है ।

इसमें पहला, दूसरा, चौथा व तेरहवा गुणस्थानक होता है ।

औदारिक मिश्रकाय योग में आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरक आयु इन छह को छोड़ 114 का बंध होता है ।

आहारक द्विक का बंध सातवें गुणस्थान में तथा देवायु व नरकत्रिक का बंध पर्याप्ति पूर्ण होने पर ही होता है ।

औदारिक मिश्रकाय योग में मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन पंचक (तीर्थंकर नाम कर्म, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग) को छोड़ 109 का ही बंध होता है ।

दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व के उदय से बँधनेवाली सूक्ष्मत्रिक से लेकर सेवार्त संघयण तक 13 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है । इसमें मनुष्य व तिर्यंच आयु का भी बंध नहीं होता है-अतः 109 में से 15 प्रकृति कम करने पर 94 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अण चउवीसाइ विणा, जिण पणजुय सम्मि जोगिणो सायं ।
विणु तिरिनराउ कम्मे वि, एवमाहारदुगि ओहो ।।16।।

शब्दार्थ

अणचउवीसाइ=अनंतानुबंधी चौबीस आदि	**आहारदुगि=**आहारक-आहारक मिश्र
जिण पण जुय=तीर्थंकरनाम आदि पाँच युक्त	**विणा=**बिना
जोगिणो=सयोगी गुणस्थानक	**सम्मि=**सम्यक्त्व गुणस्थानक में
विणु=बिना	**सायं=**शाता वेदनीय
कम्मेवि=कार्मण काय योग में	**तिरिनराउ=**तिर्यंच, मनुष्य आयुष्य
	एवं=इस प्रकार
	ओहो=ओघबंध

भावार्थ :

औदारिक मिश्रकाय योग में चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी आदि 24 बिना तथा तीर्थंकर नाम कर्म आदि पाँच युक्त 75 प्रकृतियों का बंध होता है ।

सयोगी गुणस्थानक में सिर्फ एक शाता का बंध होता है ।

कार्मण काययोग में भी तिर्यंच व मनुष्य आयुष्य के बिना इसी प्रकार बंध होता है । आहारक के दो योग में भी ओघबंध होता है ।

विवेचन :

औदारिक मिश्र काययोग में सास्वादन में 94 का बंध होता है-चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानक में अनंतानुबंधी से तिर्यंच द्विक तक 24 प्रकृतियों को कम करना चाहिए, क्योंकि वे सब प्रकृतियाँ अनंतानुबंधी से संबंधित है, अनंतानुबंधी का उदय दो गुणस्थानक तक ही होता है ।

इस गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म, देवद्विक और वैक्रिय द्विक का बंध संभव होने से कुल 75 का बंध होता है ।

तेरहवें गुणस्थानक में केवली समुद्घात के समय दूसरे, छठे व सातवें समय में सिर्फ एक शाता वेदनीय का ही बंध होता है ।

14 कार्मण काय योग में बंध स्वामित्व

कार्मण काय योग भवांतर में जाते समय अंतराल गति में तथा जन्म के पहले समय में होता है ।

कार्मण काय योग में जीव को पहला, दूसरा, चौथा व तेरहवाँ ये चार गुणस्थानक होते है । इनमें से तेरहवाँ गुणस्थानक केवली भगवंत को केवली समुद्घात के समय तीसरे, चौथे व पाँचवें समय में होता है तथा शेष तीन गुणस्थानक अंतराल गति में व जन्म के प्रथम समय में होता है ।

इस कार्मण काययोग मार्गणा में सामान्य से तथा गुणस्थानों के समय औदारिक मिश्र काययोग के समान बंध स्वामित्व समझना चाहिए । किंतु इतना फर्क है कि इसमें तिर्यंच आयु व मनुष्य आयु का बंध नहीं हो सकता है ।

आहारक काय योग और आहारक मिश्र काययोग ये दोनों योग छठे गुणस्थान में होते हैं । छठे गुणस्थान के समान इन दोनों मार्गणाओं में 63 प्रकृतियों का बंध होता है ।

प्रमत्त व अप्रमत्त नाम के छठे व सातवें गुणस्थानक में आहारक काययोग होता है ।

आहारक शरीर का प्रारंभ करते समय वह औदारिक के साथ मिश्र होता है, अर्थात् आहारक मिश्र और आहारक इन दोनों योगों में छठा गुणस्थानक होता है ।

सुरओहो वेउव्वे, तिरियनराउ रहिओ य तम्मिस्से ।
वेयतिगाइम बिय तिय, कसाय नव दु चउ पंच गुणा ।।17।।

शब्दार्थ

सुर ओहो=देव की तरह सामान्य से	**वेउव्वे=**वैक्रिय काययोग में
तिरिय=तिर्यंच	**नराउ=**मनुष्य आयुष्य
रहिओ=रहित	**तम्मिस्से=**वैक्रिय मिश्र में
वेयतिय=वेदत्रिक	**आइम=**प्रथम
बियतिय=दूसरा तीसरा	**कसाय=**कषाय
नव=नौ	**दु=**दो
चउपंच=चार-पाँच	**गुणा=**गुणस्थानक में

भावार्थ :

वैक्रिय काय योग में देवगति की तरह सामान्य से बंध होता है । वैक्रिय मिश्रकाय योग में तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य रहित बंध होता है । वेदत्रिक प्रथम, द्वितीय और तृतीय कषाय में क्रमशः नौ, दो, चार और पाँच गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :

वैक्रिय काय योग में देव गति की तरह बंध होता है । यद्यपि नारक जीवों को भी जन्म से मृत्यु तक यह योग होता है, परंतु नारक की अपेक्षा देवता एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप ये तीन प्रकृतियाँ अधिक बाँधते हैं ।

सामान्य से 104, मिथ्यात्व में 103, सास्वादन में 96, मिश्र में 70 तथा अविरति गुणस्थान में 72 का बंध होता है ।

वैक्रिय मिश्र काययोग में भी देवगति की तरह बंध होता है । परंतु उसमें तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

देव व नारकी को वैक्रिय मिश्र योग उत्पत्ति के दूसरे समय से छह पर्याप्तियाँ पूर्ण न हों तब तक कार्मण के साथ मिश्र योग होता है ।

वैक्रिय मिश्र काय योग में देव-नारक को तीसरा मिश्र गुणस्थानक नहीं होता है । वैक्रिय मिश्रयोग में आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

अपर्याप्त अवस्था में मिश्र गुणस्थानक नहीं होता है । पर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व से सम्यक्त्व की प्राप्ति समय मिश्र गुणस्थान हो सकता है, परंतु उस समय वैक्रिय काय योग होता हैं, वैक्रिय मिश्र नहीं ।

वैक्रिय मिश्रकाय योग में सामान्य से 102, प्रथम गुणस्थानक में 101, सास्वादन में 94 व अविरत में 71 का बंध होता है ।

वेद मार्गणा में बंध-स्वामित्व

वेद के दो प्रकार हैं-द्रव्यवेद और भाववेद । पुरुष आदि शरीर की रचना को द्रव्य वेद कहते हैं, जो नामकर्म जन्य है वह तेरहवें गुणस्थानक तक होता है ।

भाववेद मोहनीय कर्मजन्य है, वह नौवें गुणस्थानक तक होता है, उसके आगे मोह का उपशम या क्षय हो जाने से भाववेद नहीं होता है ।

तीनों वेद में सामान्य से 120, प्रथम गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77, पाँचवें मे 67, सातवें में 58-59, आठवें में 58, 56 व 26 तथा नौवें में 22 का बंध होता है ।

वेद के उदयवाले जीवों में सम्यक्त्व व चारित्र हो सकता है, अतः तीर्थंकर नामकर्म व आहारक द्विक का भी बंध संभव है ।

वेद का उदय नौवें गुणस्थानक के पहले भाग तक होता है ।

15 कषाय-मार्गणा

अनंतानुबंधी कषाय का उदय पहले दूसरे गुणस्थानक में ही होता है । वहाँ न सम्यक्त्व होता है और न ही चारित्र अतः यहाँ तीर्थंकर नामकर्म व आहारक द्विक का बंध नहीं होने से सामान्य से पहले गुणस्थानक में 117 व दूसरे में 101 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय एक से चार गुणस्थानक तक होता है, यहाँ सम्यक्त्व हो सकता है परंतु चारित्र का अभाव होने से आहारक द्विक का बंध नहीं होता है, परंतु तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है ।

यहाँ सामान्य से 118, प्रथम गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74 व चौथे में 77 प्रकृतियों का बंध होता है ।

प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय पाँचवें गुणस्थानक तक होता है, यहाँ भी सर्वविरति चारित्र का अभाव होने से आहारक द्विक का बंध नहीं होता है । परंतु सम्यक्त्व होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है । यहाँ सामान्य से 118, पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77 एवं पाँचवें में 67 प्रकृतियों का बंध होता है ।

संजलणतिगे नव दस, लोभे चउ अजइ दुति अनाणतिगे ।
बारस अचक्खु चक्खुसु, पढमा अहक्खाय चरिमचउ ।।18।।

शब्दार्थ

संजलणतिगे=संज्वलन त्रिक में	**नव=**नौ
दस=दस	**लोभे=**लोभ में
चउ=चार	**अजइ=**अविरति
दुति=दो या तीन	**अनाणतिगे=**अज्ञानत्रिक में
बारस=बारह गुणस्थानक	**अचक्खु=**अचक्षुदर्शनावरण
चक्खुसु=चक्षु दर्शनावरण	**पढमा=**प्रथम के
अहक्खाय=यथाख्यात	**चरिम चउ=**अंतिम चार

भावार्थ :

संज्वलन त्रिक में 9, लोभ में 10, अविरति चारित्र में 4, अज्ञानत्रिक में 2, चक्षु-अचक्षुदर्शन में पहले बारह, यथाख्यात चारित्र में अंतिम चार गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :

संज्वलन क्रोध, मान और माया का उदय नौवें गुणस्थानक तक तथा संज्वलन लोभ का उदय दसवे गुणस्थानक तक होता है ।

दूसरे कर्मग्रंथ में जो सामान्य से बंध-स्वामित्व बताया है-वह इनमें नौवे-दसवे गुणस्थानक तक होता है ।

संज्वलन क्रोध, मान व माया में सामान्य से 120 एवं पहले से नौवें गुणस्थानक तक क्रमशः 117, 101, 74, 77, 67, 63, 59, 58, 58, 56, 26 और 22 प्रकृति का बंध होता है ।

संज्वलन लोभ दसवें गुणस्थानक में होता है, वहाँ 17 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

संयम मार्गणा

संयम मार्गणा में प्रतिपक्षी अविरति का भी स्वीकार किया है-इसके 7 भेद हैं–

(1) सामायिक (2) छेदोपस्थापनीय (3) परिहार विशुद्धि (4) सूक्ष्म संपराय (5) यथाख्यात (6) देश विरति (7) अविरति ।

यहाँ सर्वप्रथम अविरति का बंध स्वामित्व बतलाते हैं–

अविरति का अर्थ है-सम्यक्त्व है, किंतु चारित्र नहीं है । इसमें चार गुणस्थानक होते हैं-सम्यक्त्व का अस्तित्व होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता हैं परंतु आहारक द्विक का नहीं । अतः यहाँ सामान्य से 118, पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74 व चौथे में 77 प्रकृतियों का बंध होता है ।

ज्ञान मार्गणा

ज्ञान मार्गणा में 5 ज्ञान के साथ 3 अज्ञान का भी समावेश किया है ।

यहाँ सर्वप्रथम अज्ञानत्रिक का बंध स्वामित्व बतलाते हैं ।

अज्ञान त्रिक में पहले दो या तीन गुणस्थानक होते हैं । अज्ञान का कारण मिथ्यात्व हैं । अतः यहाँ सामान्य से तीर्थंकर नाम कर्म व आहारक द्विक कम हो जाने से पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101 व तीसरे में 74 प्रकृतियों का बंध होता है । तीसरे गुणस्थानक में जीव की दृष्टि सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध नहीं होती है । मिश्रदृष्टि में ज्ञान भी मिश्र रूप होता है । कुछ अंश में ज्ञान व कुछ अंश में अज्ञान होता है ।

इस दृष्टि में **शुद्धता** अधिक हो तो ज्ञान व अशुद्धता अधिक हो तो अज्ञान माना जाता है ।

जो जीव मिथ्यात्व से तीसरे गुणस्थानक में आता है, उसमें अशुद्धि विशेष होती है और जो चौथे से तीसरे गुणस्थानक में आता है, उसमें सम्यक्त्व का अंश होने से विशुद्धि होती है, अतः विशुद्धि हो तो ज्ञान एवं अशुद्धि हो तो अज्ञान माना जाता है ।

इसी अपेक्षा से अज्ञान में दो या तीन गुणस्थानक माने जाते है ।

इस प्रकार अज्ञान में तीन गुणस्थानक होते हैं । वहाँ सामान्य से 117, मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101 व तीसरे मिश्र गुणस्थान में 74 प्रकृतियों का बंध होता है ।

दर्शन मार्गणा

चक्षु और अचक्षु दर्शन में एक से बारह गुणस्थानक होते हैं । ये दोनों क्षायोपशमिक भाव हैं और क्षायोपशमिक भाव बारह गुणस्थानक तक होता है । इनमें बंधेस्वामित्व दूसरे कर्म ग्रंथ के निर्देशानुसार समझना चाहिए ।

16 यथाख्यात चारित्र

यथाख्यात चारित्र में 11 से 14 तक 4 गुणस्थानक होते हैं । चौदहवें में योग का भी सर्वथा अभाव होने से कर्म का सर्वथा बंध नहीं होता है । 11 से 13 तक योग का सद्भाव होने से सिर्फ एक प्रकृति-साता वेदनीय का बंध होता है ।

मणनाणि सग जयाई, समइयच्छेय चउ दुन्नि परिहारे ।
केवलदुगि दो चरमा, ऽजयाइ नव मइसुओहि दुगे ।।19।।

शब्दार्थ

मण नाणि=मनःपर्यवज्ञान में	**सग=**सात गुणस्थानक
जयाई=प्रमत्त आदि	**समइयच्छेय=**सामायिक-छेदोपस्थापनीय
चउ=चार	**दुन्नि=**दो
परिहारे=परिहारविशुद्धि में	**केवलदुगि=**केवलद्विक
दो=दो गुणस्थानक	**चरम=**अंतिम
अजयाइ=अविरति आदि	**नव=**नौ गुणस्थानक
मइसुओहि=मति-श्रुत-अवधि	**दुगे=**द्विक में

भावार्थ :

मनः पर्यवज्ञान में प्रमत्त से 7 गुणस्थानक, सामायिक, छेदोपस्थापनीय में चार गुणस्थानक, परिहारविशुद्धि में दो गुणस्थानक, केवलद्विक में अंतिम दो गुणस्थानक तथा मति-श्रुत ज्ञान व अवधिद्विक में अविरति आदि नौ

गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :

मनः पर्यवज्ञान भी एक विशिष्ट लब्धि है, इसकी प्राप्ति 7 वें गुण-स्थानक में होती है, परंतु मनःपर्यवज्ञान होने के बाद आत्मा छठे गुणस्थानक में आ सकती है अतः मनःपर्यवज्ञान छठे गुणस्थानक में भी रहता है ।

मनःपर्यवज्ञान छठे से बारहवें गुणस्थानक में होता है । तेरहवें गुणस्थानक में क्षायिक भाव का ही ज्ञान होता है, जबकि मनःपर्यवज्ञान क्षायोपशमिक है, अतः बारहवें गुणस्थानक तक ही होता है । मनः पर्यवज्ञान में सामान्य से बंध होता है । ओघ से आहारक द्विक सहित 65, प्रमत्तगुणस्थानक में 63, सातवें में 58-59, आठवें में 58, 56 व 26 नौवें में 22,21, 20, 19 तथा 18 तथा दसवें में 17 व ग्यारहवें बारहवें में 1 प्रकृति का बंध होता है ।

संयम मार्गणा

सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में प्रमत्त से अनिवृत्तिकरण तक अर्थात् छठे से नौवें तक चार गुणस्थानक होते हैं । चारों गुणस्थानकों में ओघ से बंध होता है । इनमें आहारक द्विक का भी बंध होता है ।

परिहारविशुद्धि चारित्र छठे व सातवें गुणस्थानक में ही होता है । इस संयम में आहारक द्विक का उदय नहीं होता है, क्योंकि उसका उदय चौदह पूर्वी आहारक लब्धिवालों को ही संभव है परंतु आहारक द्विक का बंध इस संयम में हो सकता है । इस संयम में छठे गुणस्थानक में 63 व सातवें में 59 या 58 प्रकृतियों का बंध होता है ।

दर्शन-ज्ञान मार्गणा

केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दो मार्गणाओं में अंतिम दो 13 व 14 वाँ गुणस्थानक होता है, तेरहवें में सिर्फ साता का बंध होता है । चौदहवें में बंध का अभाव है ।

मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान और अवधिदर्शन इन चार मार्गणाओं में 4 से 12 तक नौ गुणस्थानक होते हैं । प्रथम तीन गुणस्थानक में सम्यक्त्व का अभाव होने से ज्ञान का अभाव है और अंतिम दो गुणस्थानकों में केवलज्ञान होने से इन चार का अभाव माना गया है ।

अड उवसमि चउ वेयगि, खइए इक्कार मिच्छितिगि देसे ।
सुहुमि सठाणं तेरस, आहारगि नियनिय गुणोहो ।।20।।

शब्दार्थ

अड=आठ	**उवसमि**=उपशम सम्यक्त्व में
चउ=चार	**वेयगि**=वेदक सम्यक्त्व में
खइए=क्षायिक में	**इक्कार**=ग्यारह
मिच्छि=मिथ्यात्व में	**तिगि**=तीन में
देसे=देशविरति में	**सुहुमि**=सूक्ष्म संपराय में
सठाणं=स्वस्थान में	**तेरस**=तेरह
आहारगि=आहारी मार्गणा में	**नियनिय**=अपने-अपने
गुणोहो=गुणस्थान प्रमाण	

भावार्थ :

उपशम सम्यक्त्व में अविरति आदि आठ गुणस्थानक, क्षयोपशम सम्यक्त्व में चार गुणस्थानक, क्षायिक में ग्यारह गुणस्थान होते हैं । मिथ्यात्व त्रिक, देशविरति और सूक्ष्म संपराय में अपना-अपना गुणस्थान होता है ।

आहारी मार्गणा में तेरह गुणस्थानक होते हैं । सर्वत्र अपने-अपने गुण-स्थानक के अनुसार ओघ बंध होता है ।

विवेचन :

अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शन त्रिक की सात प्रकृतियों का उपशमन करने पर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है । एक मत के अनुसार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करता है ।

उपशम श्रेणी में रही आत्मा को भी उपशम सम्यक्त्व ही होता है ।

यह उपशम सम्यक्त्व चौथे से लेकर ग्यारहवें उपशांत मोह गुणस्थानक तक आठ गुणस्थानों में होता है ।

इस सम्यक्त्व में आयुष्य का बंध नहीं होता है । इस सम्यक्त्व में सामान्य से 75, चौथे गुणस्थान में 75, पाँचवें में 66, छठे में 62, सातवें में 58, आठवें में 58, 56, 26 नौवें में 22, 21, 20, 19, 18 दसवें में 17 व

ग्यारहवें में 1 प्रकृति का बंध होता है ।

वेदक सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं । इस सम्यक्त्व में उदय को प्राप्त मिथ्यात्व दलिकों का क्षय और उदय को अप्राप्त दलिकों का उपशमन होने से इसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

यह सम्यक्त्व चौथे से सातवें तक चार गुणस्थानकों में होता है । इसमें आहारक द्विक का भी बंध संभव है । इसमें बंध-स्वामित्व सामान्य से 79, चौथे गुणस्थानक में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 59 या 58 प्रकृतियों बंध का होता है ।

उसके बाद के गुणस्थानों में श्रेणी का प्रारंभ होने से उपशम या क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में मिथ्यात्व मोहनीय के प्रदेशोदय का अनुभव होता है, जबकि क्षायिक व औपशमिक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व के प्रदेशोदय व विपाकोदय दोनों का अनुभव नहीं करता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व में चौथे से चौदहवें तक के ग्यारह गुणस्थान होते हैं । इसमें आहारक द्विक का भी बंध हो सकता है ।

इसमें बंध-स्वामित्व 79 प्रकृतियों का है । चौथे में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 59 या 58 आठवें में 58-56-26, नौवें में 22-21-20-19-18, दसवें में 17 व ग्यारहवें-बारहवें व तेरहवें गुणस्थान में 1-1 प्रकृति का बंध होता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य ही पा सकता है । क्षायिक सम्यक्त्व पाने के पूर्व आयुष्य का बंध न हुआ हो तो वह आत्मा उसी भव में मोक्ष में जाती है । परभव का देवायु या नरकायु का बंध हो गया हो तो वहाँ से च्यवकर अर्थात् तीसरे भव में मोक्ष में जाती है ।

क्षायिक समकिती के 4 भव : क्षायिक सम्यक्त्व पाने के पहले युगलिक के असंख्य वर्ष के मनुष्य या तिर्यंच का आयुष्य बांध दिया हो तो वहाँ से च्यवकर देव भव प्राप्तकर संख्याता वर्ष के आयुष्यवाला मनुष्य भव प्राप्तकर मोक्ष में जाता है ।

क्षायिक समकिती के 5 भव : आचार्य दुःप्पहसूरिजी म. व कृष्ण महाराजा के 5 भव भी सुनाई देते हैं । 5 भववाले जीव बहुत कम होते हैं ।

मनुष्य भव में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्तकर देव या नरक भव-फिर संख्याता वर्ष के आयुष्यवाले अयुगलिक मनुष्य भव में आए परंतु वहाँ 5 वाँ आरा होने से मोक्ष बंद होने से देशविरति, सर्वविरति स्वीकार कर देवभव में जाए और वहाँ से मनुष्य बनकर मोक्ष में जाए ।

ऐसे 5 भव वाले क्षायिक समकिती को तीसरे भव में पाँचवें-छठे गुणस्थानक में देवायु का बंध संभव है अन्यथा क्षायिक समकित के बाद पाँचवें छठे गुणस्थानक में देवायु-बंध नहीं होता है । मिथ्यात्व, सास्वादन व मिश्र को मिथ्यात्व त्रिक कहते हैं ।

सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेदों में से इन तीन भेदों में तथा देशविरति एवं सूक्ष्म संपराय मार्गणाओं में अपना-अपना एक ही गुणस्थानक होता है और उस गुणस्थानक के योग्य कर्मप्रकृति का बंध होता है ।

मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101, मिश्र में 74, देशविरति में 67 व सूक्ष्म संपराय में 17 का बंध होता है ।

आहारी मार्गणा

आहारी मार्गणा में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं । 14 वें गुणस्थान में आत्मा अणाहारी होती है । आहारी मार्गणा में दूसरे कर्मग्रंथ के बंधस्वामित्व के अनुसार बंध-स्वामित्व होता है ।

परमुवसमि वट्टंता, आउ न बंधंति तेण अजयगुणे ।
देव मणुआउ हीणो, देसाइसु पुण सुराउ विणा ।।21।।

शब्दार्थ

परम्=परंतु	**उवसमि**=उपशम सम्यक्त्व में
आउ=आयु	**न बंधंति**=नहीं बाँधता है
तेण=उस कारण	**अजयगुणे**=अविरति गुणस्थान में
देवमणुआउ=देव मनुष्य आयु	**हीणो**=हीन
देसाइसु=देशविरति आदि में	**पुण**=पुनः
सुराउ=देव आयुष्य	**विणा**=बिना

भावार्थ :

परंतु उपशम सम्यक्त्व में रहा जीव आयुष्य का बंध नहीं करता है,

इस कारण अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में देवायु व मनुष्य आयु को छोड़कर अन्य प्रकृतियों का बंध होता है। तथा देशविरति आदि में देवायु बिना अन्य स्वयोग्य प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :

उपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें तक आठ गुणस्थानों में हो सकता है-उस समय उन-उन गुणस्थानों में सामान्य से जो बंध कहा है-वह होता है, परंतु उपशम सम्यक्त्ववाला जीव आयुष्य का बंध नहीं करता है ।

यह सम्यक्त्व दो प्रकार का होता है-

(1) ग्रंथिभेद जन्य (2) उपशम श्रेणी में ।

उपशम श्रेणी में आयुष्य का बंध सर्वथा वर्जित है। ग्रंथिभेद जन्य सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान में होता है, परंतु उस समय भी आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

अतः उपशम सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में 75, देशविरति में 66, प्रमत्त में 62 व अप्रमत्त में 58 प्रकृतियों का बंध होता है ।

ओहे अट्ठारसयं आहारदुगूण माइलेसतिगे ।
तं तित्थोणं मिच्छे, साणाइसु सव्वहिं ओहो ।।22।।

शब्दार्थ

ओहे=ओघ में	**अट्ठारसयं=**एक सौ अठारह
आहार दुगूण=आहारकद्विक बिना	**माइलेसतिगे=**प्रथम की तीन लेश्या में
तं=उस बंध में से	**तित्थोणं=**तीर्थंकर नाम छोडकर
मिच्छे=मिथ्यात्व में	**साणाइसु=**सास्वादन आदि में
सव्वहिं=सर्वत्र	**ओहो=**ओघ बंध

भावार्थ :

पहली तीन लेश्याओं में आहारकद्विक को छोडकर ओघ-सामान्य से 118 प्रकृतियों का बंध होता है । उसमें तीर्थंकर नाम कर्म को छोड़कर मिथ्यात्वमें 117 का बंध और सास्वादन आदि सभी गुणस्थानों में ओघ बंध होता है ।

विवेचन :

लेश्या मार्गणा

इस गाथा में कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्याओं का बंध-स्वामित्व बतलाया है। इन तीन लेश्याओं में 1 से 4 गुणस्थानक कहे हैं। इसी कर्मग्रंथ की 25 वीं गाथा में 1 से 6 गुणस्थान भी कहे हैं।

देव और नारक में अवस्थित लेश्या भी बतलाई है। सातवीं नरक के जीव भी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, उस समय द्रव्य से कृष्ण लेश्या है, परंतु भाव से तो विशुद्ध लेश्या ही होती है। क्योंकि सम्यक्त्व की प्राप्ति कृष्ण लेश्या में नहीं होती है।

पूर्व में प्राप्त पाँचवें, छठे गुणस्थानवाले के कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ हो सकती हैं, परंतु कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले पाँचवें छठे गुणस्थान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस अपेक्षा से कृष्ण आदि तीन लेश्यावालों को पाँचवें-छठे गुणस्थान में विरोध नहीं है।

तेऊ निरय नवूणा उज्जोअचउ निरय बार विणु सुक्का।
विणु निरयबार पम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे ।।23।।

शब्दार्थ

तेऊ=तेजोलेश्या में
उज्जोअचउ=उद्योत चतुष्क
विणु=बिना
पम्हा=पद्मलेश्या में
इमा=ये प्रकृतियाँ
निरयनवूणा=नरक त्रिक आदि नौ छोड़
निरय बार=नरकादि बारह
सुक्का=शुक्ल लेश्या
अजिणाहारा=तीर्थंकर व आहारक द्विक
मिच्छे=मिथ्यात्व में

भावार्थ :

तेजोलेश्या में नरकत्रिक आदि नौ बिना, शुक्ल लेश्या में उद्योत चतुष्क व नरकत्रिक आदि बारह बिना और पद्मलेश्या में नरकादि बारह बिना बंध होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक को छोड बंध होता है ।

विवेचन :

इस गाथा में तेजोलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्या का बंध स्वामित्व बताते हैं ।

तेजोलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक होते हैं । नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक विकलेन्द्रियत्रिक इन नौ प्रकृतियों को छोड़कर ओघ से 111 प्रकृतियों का बंध होता है ।

नरकत्रिक आदि 9 प्रकृतियाँ अशुभ होने से तेजोलेश्यावाले उनका बंध नहीं करते हैं ।

पहले-दूसरे वैमानिक देवलोकवाले तेजोलेश्यावाले होते हैं, परंतु मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय व वनस्पतिकाय में जा सकते हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय स्थावर व आतप का निषेध नहीं किया है । अतः उन्हें ओघ से 111, पहले गुणस्थानक में 108, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 58-59 का बंध होता है ।

पद्मलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक होते हैं । इसमें नरक आदि बारह बिना ओघ से 108 का बंध होता है ।

तेजोलेश्या की तरह यहाँ भी नरकत्रिक आदि नौ प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इसके साथ ही तेजोलेश्यावाले सनतकुमार आदि देवता भी एकेन्द्रियादि त्रिक का बंध नहीं करते हैं, क्योंकि वे मरकर एकेन्द्रिय में नहीं जाते हैं ।

अतः पद्मलेश्या में ओघ से 108, मिथ्यात्व में 105, सास्वादन में 101 आदि का बंध होता है ।

शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं । यहाँ भी पद्मलेश्या की तरह बंध होता है । विशेष शुक्ल लेश्या में उद्योत चतुष्क का भी बंध नहीं होता है । अतः यहाँ बंध में 16 प्रकृतियाँ कम करने पर ओघ से 104, मिथ्यात्व में

101, सास्वादन में 97, मिश्र में 74, अविरत में 77 आदि का बंध होता है।

उद्योतनाम कर्म तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी और तिर्यंच आयुष्य का उदय तिर्यंच गति में ही होता है। तेजो-पद्मलेश्यावाले तिर्यंच गति में जा सकते हैं परंतु शुक्ल लेश्यावाले नहीं जाते हैं, अतः उन चार का बंध भी कम हो जाता है।

सव्वगुण भव्वसन्निसु ओहु अभव्वा असन्नि मिच्छिसमा।
सासणि असन्नि सन्निव, कम्मणभंगो अणाहारे ।।24।।

शब्दार्थ

सव्वगुण=सभी गुणस्थान	**भव्व=**भव्य
सन्निसु=संज्ञी मार्गणा में	**ओहु=**ओघ बंध
अभव्वा=अभव्य जीव	**असन्नि=**असंज्ञी में
मिच्छिसमा=मिथ्यात्वी के समान	**सासणि=**सास्वादन में
असन्नि=असंज्ञी में बंध	**सन्निव=**संज्ञी की तरह
कम्मणभंगो=कार्मण का भंग	**अणाहारे=**अणाहारी मार्गणा में

भावार्थ :

भव्य और संज्ञी मार्गणा में सभी स्थानों में सामान्य से बंध होता है।

अभव्य और असंज्ञी का बंध स्वामित्व मिथ्यात्व गुणस्थान के समान है।

सास्वादन गुणस्थान में असंज्ञी का बंध-स्वामित्व संज्ञी के समान एवं अनाहारक मार्गणा में बंध स्वामित्व कार्मण योग के समान है।

विवेचन :

भव्य और संज्ञी मार्गणा में 1 से 14 सभी गुणस्थान कहे गए हैं और उनमें द्वितीय कर्मग्रंथ में बताए अनुसार सभी गुणस्थानों में वही बंध स्वामित्व समझना चाहिए।

असंज्ञी प्राणियों को द्रव्य मन के बिना भाव मन नहीं होता है, परंतु केवली (तीर्थंकर) भगवंतों को भावमन के बिना भी द्रव्य मन होता है। केवली भगवंत को मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम जन्य मनन परिणाम रूप भाव मन नहीं है, परंतु मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेवविमानवासी देवताओं के द्वारा

पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने रूप द्रव्यमन होता है, अतः उन्हें भाव मन के बिना भी द्रव्यमन होता है । वह मन चौदह गुणस्थानक में होता है । सिद्धांत में उन्हें `नोसंज्ञी नोअसंज्ञी' कहा है ।

संज्ञी मार्गणा में द्रव्य मन की अपेक्षा संज्ञी मानकर चौदह गुणस्थान कहे हैं ।

अभव्य जीवों को पहला ही गुणस्थानक होता है । क्योंकि उन्हें कभी भी सम्यक्त्व और संयम की प्राप्ति नहीं होती है । अतः वे तीर्थंकरनाम व आहारक द्विक को छोड़कर मिथ्यात्व गुणस्थान में 117 प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं ।

असंज्ञी प्राणियों को पहला व दूसरा दो ही गुणस्थान हो सकते हैं । पहले में 117 व दूसरे में 101 प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं ।

अनाहारक मार्गणा में कार्मण काय योग के समान बंध होता है ।

अनाहारक अवस्था में पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ और चौदहवाँ गुणस्थानक हो सकता है ।

एक गति से दूसरी गति में विग्रह गति से जाते समय आत्मा एक, दो या तीन समय तक अनाहारक होती है उस समय आत्मा को औदारिक आदि स्थूल शरीर नहीं होने से अनाहारक अवस्था होती है तथा केवली समुद्घात में तीसरे चौथे व पाँचवें समय में भी अनाहारक होती है ।

चौदहवें गुणस्थान में योग का सर्वथा निरोध हो जाने से किसी प्रकार का आहार संभव नहीं है ।

तिसु दुसु सुक्काइ गुणा चउ सग तेर त्ति बंध सामित्तं ।
देविंदसूरि रइअं नेयं कम्मत्थयं सोउं ।।25।।

शब्दार्थ

तिसु=तीन लेश्याओं में	**दुसु**=दो लेश्याओं में
सुक्काइ=शुक्ल लेश्या में	**गुणा**=गुणस्थानक
चउ=चार	**सग**=सात
तेर=तेरह	**त्ति**=इस प्रकार
बंधसामित्तं=बंध स्वामित्व	**देविंदसूरि**=देवेन्द्रसूरि
रइअं=लिखा हुआ	**नेयं**=जानना चाहिए
कम्मत्थयं=	**सोउं**=

भावार्थ :

पहली तीन लेश्याओं में पहले से चार, तेज और पद्म लेश्या में पहले से सात तथा शुक्ल लेश्या में तेरह गुणस्थानक होते हैं ।

इस प्रकार श्री **देवेन्द्रसूरि** द्वारा विरचित इस बंध स्वामित्व प्रकरण का ज्ञान `**कर्मस्तव**' नाम के दूसरे कर्मग्रंथ के अनुसार जानना चाहिए ।

विवेचन :

लेश्याओं में गुणस्थानक बताकर ग्रंथ का समापन करते हैं ।

अन्य मार्गणाओं के गुणस्थानों में मतभेद नहीं है । परंतु लेश्या मार्गणा में थोड़ा मतभेद है । चौथे कर्मग्रंथ में कृष्ण आदि तीन लेश्याओं में 6 गुण स्थानक बतलाए हैं, जबकि यहाँ चार ही गुणस्थान कहे हैं ।

कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ अशुभ हैं, अतः उन लेश्याओं में रहा जीव अधिकतम चार गुणस्थानक प्राप्त कर सकता है, परंतु पाँचवें छठे गुणस्थानक में रहा जीव अशुभ लेश्या में भी आ सकता है । इस अपेक्षा से वहाँ छह गुण-स्थानक कहे हैं ।

देव व नरक में द्रव्य लेश्या नियत है, परंतु भाव के परिवर्तन से छह लेश्याएँ वहाँ संभव है । 1 से 7 नरक के जीवों में द्रव्य से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या होने पर भी जब वे समकित पाते हैं, तब उन्हें तेज, पद्म व शुक्ल भाव लेश्या होती है ।

तेज व पद्म लेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक तथा शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं । गुणस्थानों में प्रकृतियों का बंध दूसरे कर्मग्रंथ के बंध-स्वामित्व के अनुसार जानना चाहिए ।

इस ग्रंथ में 62 मार्गणाओं में रहा जीव भिन्न-भिन्न गुणस्थानकों में कितनी कर्म प्रकृतियाँ बाँधता है, उसके अनुसार इस ग्रंथ का नाम `बंध-स्वामित्व' रखा है ।

इस ग्रंथ के रचयिता तपागच्छ के आद्य आचार्य जगच्चन्द्रसूरिजी के शिष्य आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म. है ।

इस कर्मग्रंथ में 62 में से बहुतसी मार्गणाओं में बंध-स्वामित्व ओघ से कहा है, उसका बोध दूसरे कर्मग्रंथ के अभ्यास से ही संभव है, अतः इस कर्म ग्रंथ के अभ्यासी को पहले दूसरे कर्म ग्रंथ का अभ्यास अवश्य भी करना चाहिए ।

मार्गणाओं में उदय-उदीरणा-सत्ता-स्वामित्व

(मुनिश्री मिश्रीमलजी विवेचित तीसरे कर्मग्रंथ में से साभार)

तीसरे कर्मग्रन्थ में सामान्य और गुणस्थानों के माध्यम से मार्गणाओं में बन्धस्वामित्व का कथन है, किन्तु उदय, उदीरणा, सत्ता के स्वामित्व का विचार नहीं किया गया है। लेकिन उपयोगिता की दृष्टि से संक्षेप में उनका विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। अतः उनसे सम्बन्धित स्पष्टीकरण किया जाता है।

उदयस्वामित्व

1) नरकगति–इस मार्गणा में मिथ्यात्व से लेकर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थान होते हैं। सामान्यतया उदययोग 122 प्रकृतियाँ हैं, उनमें से ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण चार, अंतराय पाँच, मिथ्यात्वमोहनीय, तैजसनाम, कार्मणनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु नाम, निर्माणनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम और अशुभनाम ये सत्तावीस प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी-अपनी-अपनी उदय-भूमिका पर्यन्त अवश्य उदयवाली होती हैं। उनमें मिथ्यात्वमोहनीय की उदयभूमि प्रथम गुणस्थान है और वहाँ वह ध्रुवोदयी है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियों का उदय बारहवें गुणस्थान तक और शेष बारह प्रकृतियों का उदय तेरहवें गुणस्थान तक सभी जीवों के होने से वे **ध्रुवोदयी** हैं।

ये सत्तावीस ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ तथा निद्रा, प्रचला, वेदनीयद्विक, नीच गोत्र, नरकत्रिक, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियद्विक, हुण्डसंस्थान, अशुभविहायोगति, पराघात, उच्छ्वासनाम, उपघात, त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश, सोलह कषाय, हास्यादिषट्क, नपुंसक वेद, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्र मोहनीय ये 76 प्रकृतियाँ सामान्य से नारकों के उदय में होती हैं। उनमें से **पंचसंग्रह** और **कर्मप्रकृति** के मत से स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय वैक्रिय शरीरी देव और नारकों के नहीं होता है। कहा है कि असंख्य वर्ष की आयु वाले मनुष्य, तिर्यंच, वैक्रिय शरीर वाले, आहारक शरीर वाले और अप्रमत्त साधु के सिवाय शेष अन्य के स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय और उदीरणा होती है।

सामान्य से उदयवाली 76 प्रकृतियों में से सम्यक्त्वमोहनीय और

मिश्र मोहनीय को कम करने पर मिथ्यात्व गुणस्थान में 74 प्रकृतियाँ तथा नरकानुपूर्वी और मिथ्यात्वमोहनीय के सिवाय 72 प्रकृतियाँ सास्वादन गुणस्थान में उदययोग्य हैं, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क को कम करने और मिश्र मोहनीय को जोड़ने पर मिश्रगुणस्थान में 69 प्रकृतियाँ और उनमें से मिश्र मोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय तथा नरकानुपूर्वी का प्रक्षेप करने से अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 70 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

2) तिर्यंचगति–इस मार्गणा में पाँच गुणस्थानक होते हैं । इसमें देवत्रिक, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, मनुष्यत्रिक, उच्च गोत्र और जिन नाम-इन पन्द्रह प्रकृतियों का उदय नहीं होता है । इसलिए उदययोग्य 122 प्रकृतियों में से पन्द्रह प्रकृतियों को कम करने पर सामान्य से 107 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । तिर्यंचों के भवधारणीय वैक्रिय शरीर नहीं होता है, किन्तु लब्धिप्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है, अतः उसकी अपेक्षा से वैक्रियद्विक को साथ जोड़ने पर 109 प्रकृतियाँ उदय में मानी जा सकती हैं लेकिन समान्य से 107 प्रकृतियाँ उदययोग्य मानी जाती हैं ।

पूर्वोक्त 107 प्रकृतियों में से सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय–इन दो प्रकृतियों को कम करने से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 105 प्रकृतियाँ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतपनाम और मिथ्यात्वमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं, उनमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्थावर नाम, एकेन्द्रियादि जातिचतुष्क और तिर्यंचानुपूर्वी-इन दस प्रकृतियों को कम करने पर और मिश्रमोहनीय को जोड़ने से मिश्र गुणस्थानक में 91 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से मिश्रमोहनीय के कम करने और सम्यक्त्व मोहनीय तथा तिर्यंचानुपूर्वी-इन दो प्रकृतियों को मिलाने से अविरत गुणस्थान में 92 उदय में होती हैं । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयश और तिर्यंचानुपूर्वी इन आठ प्रकृतियों के सिवाय देशविरति गुणस्थान में 84 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

यहाँ सर्वत्र लब्धिप्रत्यय वैक्रिय शरीर की विवक्षा नहीं की है, अतएव वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग इन दो प्रकृतियों को सर्वत्र कम समझना चाहिए ।

3) मनुष्यगति–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं। देवत्रिक, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, जातिचतुष्क, तिर्यंचत्रिक, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप-इन 20 प्रकृतियों का उदय मनुष्य को होता नहीं है, इसलिए उनको कम करने पर सामान्य से 102 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। परन्तु लब्धि-निमित्तक वैक्रिय शरीर की अपेक्षा उत्तरवैक्रिय शरीरकरने पर वैक्रियद्विक और उद्योत नाम का उदय होने से इन तीन प्रकृतियों सहित 105 प्रकृतियाँ भी उदय में हो सकती हैं लेकिन उनकी यहाँ अपेक्षा नहीं की गई है। यहाँ सामान्य से जो 102 प्रकृतियाँ उदय में आती हैं, उनमें से मिथ्यात्व गुणस्थानक में आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों का उदय नहीं होने से, उन्हें कम करने पर 97 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। अपर्याप्तनाम और मिथ्यात्वमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थान में 95 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। उनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मनुष्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को जोड़ने पर मिश्र गुणस्थान में 91 प्रकृतियाँ हैं तथा उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करने तथा सम्यक्त्वमोहनीय एवं मनुष्यानुपूर्वी को मिलाने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 92 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र इन 9 प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थान में 83 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। उक्त 83 प्रकृतियों में से प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का उदयविच्छेद पाँचवें गुणस्थान में हो जाने से छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान में 79 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं, लेकिन आहारकद्विक का उदय छठे गुणस्थान में होता है अतः इन दो प्रकृतियों को मिलाने से 81 प्रकृतियों का उदय माना जाता है।

स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थान में 76 प्रकृतियाँ होती हैं। सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों को कम करने पर अपूर्वकरण में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। हास्यादिषट्क के सिवाय अनिवृत्ति गुणस्थान में 66 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। वेदत्रिक और संज्वलनत्रिक इन छह प्रकृतियों के अलावा सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में 60 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। संज्वलन लोभ के

बिना उपशांतमोह गुणस्थान में 59 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। ऋषभनाराच और नाराच इन दो प्रकृतियों के सिवाय क्षीणमोह गुणस्थान के द्विचरम समय में 57 प्रकृतियाँ और निद्रा, प्रचला के सिवाय क्षीणमोह के अन्तिम समय में 55 प्रकृतियाँ होती हैं। ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4 और अन्तराय 5-इन चौदह प्रकृतियों के उदयविच्छेद होने तथा तीर्थंकर नामकर्म उदययोग्य होने से सयोगिकेवली गुणस्थान में 42 प्रकृतियाँ होती हैं। औदारिकद्विक, विहायोगतिद्विक, अस्थिर, अशुभ, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, संस्थानषट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, वज्रऋषभनाराच संहनन, दुःस्वर, सुस्वर, सातावेदनीय और असातावेदनीय में से कोई एक इन 30 प्रकृतियों के बिना अयोगिकेवली गुणस्थान में 12 प्रकृतियों का उदय होता है। सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, साता या असाता वेदनीय में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यद्विक, जिननाम और उच्च गोत्र-ये 12 प्रकृतियाँ अयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय में उदय विच्छिन्न होती हैं।

4) देवगति-इस मार्गणा में प्रथम चार गुणस्थानक होते हैं। नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, मनुष्यत्रिक, जातिचतुष्क, औदारिकद्विक, आहारकद्विक, संहननषट्क, न्यग्रोधपरिमण्डलादि पाँच संस्थान, अशुभ विहायोगति, आतप, उद्योत, जिननाम, स्थावरचतुष्क, दुःस्वर, नपुंसक वेद, नीच गोत्र और स्त्यानर्द्धित्रिक इन 42 प्रकृतियों के सिवाय ओघ से देवों के 80 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। यहाँ उत्तरवैक्रिय शरीर करने की अपेक्षा देवों के उद्योत नामकर्म का उदय संभव है, परन्तु भवप्रत्यय शरीर निमित्तक उद्योत का उदय विवक्षित होने से दोष नहीं है। मिथ्यात्व गुणस्थान में मिश्र व सम्यक्त्व मोहनीय का अनुदय होने से 78 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। मिथ्यात्व का विच्छेद हो जाने से सास्वादन में 77 प्रकृतियाँ, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और देवानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 73 प्रकृतियाँ, मिश्रमोहनीय को कम करने तथा सम्यक्त्व मोहनीय और देवानुपूर्वी इन दो प्रकृतियों को जोड़ने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 74 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

5) एकेन्द्रिय जाति–एकेन्द्रिय मार्गणा में आदि के दो गुणस्थानक होते

हैं। वैक्रियाष्टक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, द्वीन्द्रियजातिचतुष्क, आहारकद्विक, औदारिक अंगोपांग, आदि के पाँच संस्थान, विहायोगतिद्विक, जिननाम, त्रस, छह संहनन, दुःस्वर, सुस्वर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, सुभगनाम, आदेयनाम-इन 42 प्रकृतियों के बिना सामान्यतः और मिथ्यात्व गुणस्थान में 80 प्रकृतियाँ होती हैं और वायुकाय को वैक्रिय शरीर नाम का उदय होने से एकेन्द्रिय मार्गणा में 81 प्रकृतियाँ उदय में होती है।

सूक्ष्मत्रिक, आतपनाम, उद्योतनाम, मिथ्यात्वमोहनीय, पराघातनाम और श्वासोच्छ्वासनाम-इन आठ प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं, क्योंकि सास्वादन गुणस्थान एकेन्द्रिय पृथ्वी, अप् और वनस्पति को अपर्याप्त अवस्था में शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होता है और आतपनाम, उद्योतनाम, पराघातनाम और उच्छ्वास का उदय शरीरपर्याप्ति एवं श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद होता है। औपशमिक सम्यक्त्व का उद्वमन करने वाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय, लब्धि-अपर्याप्त और साधारण वनस्पति में उत्पन्न नहीं होता है, अतः उसके वहाँ सूक्ष्मत्रिक उदय में नहीं है।

6) द्वीन्द्रिय जाति–एकेन्द्रिय के समान द्वीन्द्रिय के भी दो गुणस्थानक होते हैं। वैक्रियाष्टक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, द्वीन्द्रिय के बिना एकेन्द्रिय जातिचतुष्क, आहारकद्विक, आदि के पाँच संहनन, पाँच संस्थान, शुभ विहायोगति, जिननाम, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, सुभग, आदेय, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय-इन चालीस प्रकृतियों के उदय-अयोग्य होने से सामान्यतः और मिथ्यात्व गुणस्थान में 82 प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। उनमें से अपर्याप्त नाम, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात, अशुभ विहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर-इन आठ प्रकृतियों के बिना सास्वादन गुणस्थान में 74 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं, क्योंकि मिथ्यात्वमोहनीय का उदय तो वहाँ होता नहीं है और उसके सिवाय शेष प्रकृतियों का उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही होता है और सास्वादन तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले ही होता है।

7-8) त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति-इन दोनों मार्गणाओं में भी द्वीन्द्रिय के समान ही दो गुणस्थानक होते हैं और उदयस्वामित्व भी उसके समान जानना चाहिए, किन्तु द्वीन्द्रिय के स्थान पर त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय समझना ।

9) पंचेन्द्रिय जाति–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं । जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों को कम करने पर मिथ्यात्व गुणस्थान में 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं तथा मिथ्यात्वमोहनीय, अपर्याप्त और नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थान में 106 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक इन सात प्रकृतियों के बिना और मिश्र मोहनीय को मिलाने से मिश्र गुणस्थान में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

मिश्रमोहनीय को कम करने और चार आनुपूर्वी तथा सम्यक्त्वमोहनीय को संयुक्त करने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 104 प्रकृतियाँ होती हैं । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियाष्टक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशकीर्ति इन 17 प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थान में 87 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं और छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्यगति के समान 81, 76, 72, 66, 60, 59, 57,42 और 12 प्रकृतियों का उदय स्वामित्व समझना चाहिए ।

10) पृथ्वीकाय–इस मार्गणा में एकेन्द्रिय की तरह दो गुणस्थानक समझना चाहिए । एकेन्द्रिय मार्गणा में कही गई 42 प्रकृतियाँ और साधारणनाम के सिवाय सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थान में 79 प्रकृतियों का उदय होता है । सूक्ष्म, लब्धि-अपर्याप्त, आतप, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात, श्वासोच्छ्वास इन सात प्रकृतियों के बिना सास्वादन गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । सास्वादन गुणस्थान करण-अपर्याप्त पृथ्वीकायादि को होता है, किन्तु लब्धि-अपर्याप्त को नहीं होता है ।

11) अप्काय–पृथ्वीकाय के समान यहाँ भी दो गुणस्थानक होते हैं ।

पृथ्वीकाय मार्गणा में कही गई 43 प्रकृतियाँ और आतपनाम के सिवाय सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थान में 78 प्रकृतियों का उदय होता है । उनमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात और उच्छ्वास इन छह प्रकृतियों के अलावा सास्वादन गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ होती हैं । क्योंकि सूक्ष्म, एकेन्द्रिय और लब्धि-अपर्याप्त में सम्यक्त्व का उद्वमन करने वाला कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है । अतएव सास्वादन गुणस्थान में सूक्ष्म और अपर्याप्त नाम का उदय नहीं होता है । शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत नाम और पराघात नाम का उदय होता है । श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होने के अनन्तर श्वासोच्छ्वास का उदय होता है और मिथ्यात्वमोह का उदय यहाँ होता नहीं है ।

12-13) तेजस्काय, वायुकाय–इनमें पहला गुणस्थानक होता है । तेजस्काय में अप्काय की 44 तथा उद्योत और यश:कीर्ति इन 46 प्रकृतियों के सिवाय 76 प्रकृतियों का तथा वायुकाय में वैक्रिय शरीर सहित 77 प्रकृतियों का उदय होता है ।

14) वनस्पतिकाय–इस मार्गणा में दो गुणस्थानक होते हैं । एकेन्द्रिय मार्गणा में कही गई 42 प्रकृतियों और आतपनाम के अतिरिक्त सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 79 और सास्वादन गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

15) त्रसकाय–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं । उसमें स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और एकेन्द्रिय जाति इन पाँच प्रकृतियों के अलावा सामान्य से 117 व आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान में 112 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से मिथ्यात्व, अपर्याप्त और नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों को कम करने से सास्वादन गुणस्थानक में 109 प्रकृतियाँ होती हैं । उनमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क, विकलेन्द्रियत्रिक और आनुपूर्वीत्रिक–इन दस प्रकृतियों का उदयविच्छेद होता है और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

आनुपूर्वीचतुष्क और सम्यक्त्वमोहनीय– इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने

और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। देशविरत आदि गुणस्थानों में सामान्य उदयाधिकार में कहा गया 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59, 57, 42 और 12 प्रकृतियों का उदय क्रमशः समझना चाहिए।

16) मनोयोग–यहाँ तेरह गुणस्थानक होते हैं। स्थावर चतुष्क, जातिचतुष्क, आतप और आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र इन पाँच प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व गुणस्थान में 104 प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व से रहित सास्वादन में 103, अनन्तानुबन्धीचतुष्क को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 100 तथा मिश्रमोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय को जोडने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 100, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थानक में 87 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। शेष रहे गुणस्थानों में मनुष्यगति मार्गणा के समान उदय समझना चाहिए।

17) वचनयोग–यहाँ तेरह गुणस्थान होते हैं। स्थावरचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, आतप और आनुपूर्वीचतुष्क-इन दस प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 112, आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र-इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान में 107, मिथ्यात्वमोहनीय और विकलेन्द्रियत्रिक इन चार प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थान में 103 प्रकृतियाँ होती हैं। यद्यपि विकलेन्द्रिय को वचनयोग होता है, परन्तु भाषापर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही होता है और सास्वादन तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होता है। इसलिए इस मार्गणा में सास्वादन गुणस्थान में वचनयोग नहीं होता है। अतएव विकलेन्द्रियत्रिक निकाल दिया है। उसमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर आगे के गुणस्थानों में मनोयोग मार्गणा के समान समझना चाहिए।

18) काययोग–इस मार्गणा में तेरह गुणस्थानक होते हैं। इसमें सामान्य से 122, मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117, सास्वादन में 111 इत्यादि

सामान्य उदयाधिकार में कही प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

19) पुरुषवेद–इसमें नौ गुणस्थानक होते हैं । नरकत्रिक, जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, अपर्याप्त, जिननाम, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन 15 प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 107 प्रकृतियों का उदय होता है । उनमें से आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र इन चार प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व गुणस्थान में 103 प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व प्रकृति के बिना सास्वादन में 102 प्रकृतियाँ, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वी त्रिक-इन सात प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को जोड़ने से मिश्र गुणस्थान में 96 प्रकृतियाँ और उनमें से मिश्र मोहनीय को निकालकर सम्यक्त्व तथा आनुपूर्वीत्रिक-इन चार प्रकृतियों को जोड़ने से अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 99 प्रकृतियाँ होती हैं ।

आनुपूर्वीत्रिक, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, देवगति, देवायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 प्रकृतियाँ होती हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ प्रकृतियों को कम करके आहारकद्विक को मिलाने से प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में 79 प्रकृतियाँ होती हैं । उनमें से स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त में 74 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थान में 70 प्रकृतियाँ होती हैं और हास्यादि छह प्रकृतियों के बिना अनिवृत्ति गुणस्थान में 64 प्रकृतियाँ होती हैं ।

20) स्त्रीवेद–इसमें भी पुरुषवेद के समान नौ गुणस्थानक होते हैं और यहाँ सामान्य से तथा प्रमत्त गुणस्थान में आहारकद्विक के बिना तथा चौथे गुणस्थानक में आनुपूर्वीत्रिक के सिवाय शेष रही प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए । क्योंकि प्रायः स्त्रीवेदी के परभव में जाते समय चतुर्थ गुणस्थानक नहीं होता है । अतः आनुपूर्वीत्रिक का उदय नहीं होता है और स्त्री चतुर्दश पूर्वधर नहीं होती है । इसलिए उसे आहारकद्विक का भी उदय नहीं होता है । अतः सामान्य से तथा नौ गुणस्थानों में अनुक्रम से 105, 103, 102, 96, 85, 77, 74, 70 और 64 इस प्रकार उदय समझना चाहिए ।

21) नपुंसकवेद–इसमें भी नौ गुणस्थानक होते हैं । इसमें देवत्रिक, जिननाम, स्त्रीवेद और पुरुषवेद, आहारकद्विक इन 8 प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 114, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 112 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों को कम करने पर सास्वादन गुणस्थानक में 106 प्रकृतियाँ होती हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर और जातिचतुष्क इन 11 प्रकृतियों के कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 96 प्रकृतियाँ और मिश्र मोहनीय के क्षय व सम्यक्त्व व नरकानुपूर्वी के उदययोग्य होने से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 97 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन बारह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 प्रकृतियाँ होती हैं । तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र, उद्योत और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ प्रकृतियों को कम करने से 77 प्रकृतियाँ प्रमत्त गुणस्थान में होती हैं । स्त्यानर्द्धित्रिक-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थानक में 74 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ और हास्यादिषट्क के बिना अनिवृत्ति गुणस्थानक में 64 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

22) क्रोध–यहाँ नौ गुणस्थानक होते हैं । मान-4, माया-4, लोभ-4 और जिननाम इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 109, सम्यक्त्व, मिश्र और आहारकद्विक-इन 4 प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान में 105, सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 99 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । अनन्तानुबन्धी क्रोध, स्थावर, जातिचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन नौ प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 91 प्रकृतियाँ, उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय तथा आनुपूर्वीचतुष्क को मिलाने पर अविरत गुणस्थान में 95 प्रकृतियाँ, उनमें से अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, आनुपूर्वीचतुष्क, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन चौदह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थान में 81 प्रकृतियाँ होती

हैं। तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र और प्रत्याख्यानावरण क्रोध-इन पाँच प्रकृतियों के न्यून करने और आहारकद्विक के मिलाने पर प्रमत्त गुणस्थान में 78 प्रकृतियाँ होती हैं। स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इस पाँच प्रकृतियों को कम करने पर अपमत्त गुणस्थानक में 73 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अन्तिम तीन संहनन इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानक में 69 और हास्यादिषट्क बिना अनिवृत्ति गुणस्थानक में 63 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

23-24-25) मान, माया और लोभ-यहाँ उदयस्वामित्व पूर्ववत् समझना चाहिए। परन्तु मान और माया कषाय मार्गणा में नौ गुणस्थानक होते हैं। अपने सिवाय अन्य तीन कषायों की बारह प्रकृतियाँ भी कम करनी चाहिए। जैसे कि मान मार्गणा में अन्य तीन कषाय के अनन्तानुबन्धी आदि बारह भेद और जिननाम-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। इसी प्रकार अन्य कषायों के लिए भी समझना चाहिए। लोभ मार्गणा में दसवें गुणस्थानक में तीन वेदों को कम करने पर 60 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

26-27-28) मति, श्रुत और अवधि ज्ञान-यहाँ चौथे से लेकर बारहवें तक नौ गुणस्थानक होते हैं। सामान्य से 106 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। आहारकद्विक के सिवाय अविरत गुणस्थानक में 104 और देशविरत आदि गुणस्थानों में सामान्य उदयाधिकार के अनुसार क्रमशः 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 57 का उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

29) मनः पर्यायज्ञान–इस मार्गणा में प्रमत्त गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक सात गुणस्थानक होते हैं, इसलिए सामान्य से 81 और प्रमत्तादि गुणस्थानों में अनुक्रम से 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 57 प्रकृतियाँ उदय में समझनी चाहिए।

30) केवलज्ञान–इस मार्गणा में तेरहवाँ और चौदहवाँ ये दो गुणस्थानक होते हैं। उनमें सामान्यतः 42 और 12 प्रकृतियाँ अनुक्रम से समझना चाहिए।

31-32) मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान–यहाँ आदि के तीन गुणस्थानक समझना चाहिए। आहारकद्विक, जिननाम और सम्यक्त्वमोहनीय के बिना

सामान्य से 118 और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117, सास्वादन गुणस्थानक में 111 और मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

33) विभंग ज्ञान–यहाँ भी पूर्व कथनानुसार तीन गुणस्थानक होते हैं । आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व, स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, आतप, मनुष्यानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वी इन पन्द्रह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 107 प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं । मनुष्य और तिर्यंच में विग्रहगति से विभंगज्ञान सहित नहीं उपजता है, ऋजुगति से उपजता है, अतएव यहाँ मनुष्यानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वी का निषेध किया है । मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय के सिवाय 106 प्रकृतियाँ, सास्वादन में मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी के बिना 104 प्रकृतियाँ, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और देवानुपूर्वी को कम करने और मिश्र मोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

34-35) सामायिक और छेदोपस्थापनीय संयम–इन दोनों चारित्रों में प्रमत्त से लेकर चार गुणस्थानक होते हैं । उनमें 81, 76, 72 और 66 प्रकृतियों का क्रमशः उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

36) परिहारविशुद्धि–यहाँ छठा और सातवाँ ये दो गुणस्थानक होते हैं । उनमें पूर्वोक्त 81 प्रकृतियों में से आहारकद्विक, स्त्रीवेद, प्रथम संहनन के सिवाय शेष पाँच संहनन-इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से और प्रमत्त में 73 प्रकृतियाँ होती हैं । परिहारविशुद्धि चारित्र वाला चतुर्दश पूर्वधर नहीं होता है तथा स्त्री को परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता है और वज्रऋषभनाराच संहनन वाले को ही परिहारविशुद्धि चारित्र होता है, इसीलिए यहाँ पूर्वोक्त आठ प्रकृतियों के उदय का निषेध किया है । स्त्यानर्द्धित्रिक के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

37) सूक्ष्मसंपराय–यहाँ सिर्फ दसवाँ सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक ही होता है । सामान्यतः यहाँ 60 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

38) यथाख्यात–यहाँ अन्त के 11, 12, 13 और 14 ये चार गुणस्थानक होते हैं । उनमें उपशान्त मोह में 59, ऋषभनाराच और नाराच इन दो संहनन के सिवाय क्षीणमोह के द्विचरम समय में 57, निद्राद्विक के बिना

अन्तिम समय में 55, सयोगिकेवली गुणस्थानक में 42 और अयोगिकेवली गुणस्थानक में 12 प्रकृतियों का उदय होता है ।

39) देशविरत–यहाँ पाँचवाँ एक ही गुणस्थानक होता है और उसमें सामान्य से 87 प्रकृतियों का उदय जानना चाहिए ।

40) अविरत–इस मार्गणा में प्रथम चार गुणस्थानक होते हैं । इसमें जिननाम और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 119, सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 117, सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 111, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर, जातिचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन बारह प्रकृतियों को कम करने और मिश्र मोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ होती हैं, उनमें आनुपूर्वीचतुष्क और सम्यक्त्वमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

41) चक्षुदर्शन–यहाँ बारह गुणस्थानक होते हैं । जातित्रिक, स्थावरचतुष्क, जिननाम, आतप, आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 110, मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 109, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और चतुरिन्द्रिय जाति-इन पाँच प्रकृतियों के बिना और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान में 100 तथा अविरतसम्यग्दृष्टि में 104, देशविरत आदि गुणस्थानों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

42) अचक्षुदर्शन–इस मार्गणा में भी बारह गुणस्थानक होते हैं । इसमें जिननाम के बिना सामान्य से 121, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान में 117 प्रकृतियाँ होती हैं । शेष गुणस्थानों मे क्रमशः 111, 100, 104, 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 55 का उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

43) अवधिदर्शन–यहाँ चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक नौ गुणस्थानक होते हैं । सिद्धान्त के मतानुसार विभंगज्ञानी को भी अवधिदर्शन

कहा है । अतएव उसके मत में आदि के तीन गुणस्थानक भी होते हैं । परन्तु **कर्मग्रन्थ** के मत से विभंगज्ञानी को अवधिदर्शन नहीं होता है । अतएव अवधिज्ञानी के समान सामान्य से 106 व अविरत गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ होती हैं । आगे के गुणस्थानों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

44) केवलदर्शन–यहाँ अन्तिम दो गुणस्थानक होते हैं और उनमें 42 तथा 12 प्रकृतियों का अनुक्रम से उदय समझना चाहिए ।

45-46-47) कृष्ण, नील, कापोत लेश्या–यहाँ पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा प्रथम से लेकर छह गुणस्थानक होते हैं । जिननाम के बिना सामान्य से 121 प्रकृतियाँ होती हैं, परन्तु प्रतिपद्यमान को अपेक्षा आदि के चार गुणस्थानक होते हैं । उस अपेक्षा से आहारकद्विक के बिना सामान्य से 119 प्रकृतियाँ होती हैं और मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अनुक्रम से 117, 111, 100, 104, 87 और 81 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

48) तेजोलेश्या–इसमें पहले से लेकर अप्रमत्त तक सात गुणस्थानक होते हैं । इसमें सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, नरकत्रिक, आतपनाम और जिननाम इन 11 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 111, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के सिवाय मिथ्यात्व गुणस्थान में 107, मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 106, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावरनाम, एकेन्द्रिय और आनुपूर्वीत्रिक-इन नौ प्रकृतियों के सिवाय और मिश्रमोहनीय के मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 98, आनुपूर्वीत्रिक और सम्यक्त्वमोहनीय का प्रक्षेप करने और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में 101, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, आनुपूर्वीत्रिक, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, दुर्भगनाम, अनादेय और अयश इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थान में 87, प्रमत्त गुणस्थान में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियाँ होती हैं ।

49) पद्मलेश्या–इसमें सात गुणस्थानक होते हैं । इसमें स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, नरकत्रिक, जिननाम और आतप इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक के देवों के पद्मलेश्या होती है और वे मरकर एकेन्द्रिय में नहीं जाते हैं, तथा नरक में पहली तीन लेश्याएँ

होती हैं और जिननाम का उदय शुक्ललेश्या वाले को ही होता है । अतएव स्थावरचतुष्क आदि तेरह प्रकृतियों का विच्छेद कहा है । आहारकद्विक, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 105, सास्वादन में मिथ्यात्व के बिना 104, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक इन सात प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर 98 प्रकृतियाँ मिश्र गुणस्थानक में होती हैं । उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करके और आनुपूर्वीद्विक तथा सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने से 100 प्रकृतियाँ अविरत गुणस्थानक में होती हैं । उनमें से अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, आनुपूर्वीत्रिक, देवगति, देवायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन चौदह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 87, प्रमत्त में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियाँ होती हैं ।

50) शुक्ललेश्या–इसमें तेरह गुणस्थानक हैं । स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, नरकत्रिक और आतप नाम-इन 12 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 110 प्रकृतियाँ होती हैं । आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र और जिननाम इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 105 प्रकृतियाँ होती हैं । मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 104, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक को कम करके मिश्रमोहनीय को मिलाने से मिश्र गुणस्थानक में 98, अविरत गुणस्थानक में 100 और देशविरति में 87 प्रकृतियाँ होती हैं । आगे के गुणस्थानों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

51) भव्य–यहाँ चौदह गुणस्थानक होते है और उनमें सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

52) अभव्य–इसमें सिर्फ पहला गुणस्थानक होता है । सम्यक्त्व, मिश्र, जिननाम और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के बिना सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 प्रकृतियाँ होती हैं ।

53) उपशम सम्यक्त्व–इस मार्गणा में चौथे से लेकर ग्यारहवें तक आठ गुणस्थानक होते हैं । स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय, जिननाम, आहारकद्विक, आतपनाम और आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेईस प्रकृतियों के बिना सामान्य से और

अविरत गुणस्थानक में 99 प्रकृतियाँ होती हैं। अन्य आचार्य के मत से उपशम सम्यग्दृष्टि आयु पूर्ण होने से मरकर अनुत्तर देवलोक तक उत्पन्न होता है, तो उस समय उसे अविरत गुणस्थानक में देवानुपूर्वी का उदय होता है, इस अपेक्षा सामान्य से और अविरत गुणस्थान में 100 प्रकृतियाँ होती हैं। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 या 86 प्रकृतियाँ होती हैं। तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीच गोत्र, उद्योत और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ प्रकृतियों के बिना प्रमत्त गुणस्थानक में 78, स्त्यानर्द्धित्रिक के बिना अप्रमत्त गुणस्थान में 75 और अन्तिम तीन संहनन के बिना अपूर्वकरण में 72 प्रकृतियाँ होती हैं और उसके बाद आगे के गुणस्थानों में अनुक्रम से 66, 60, 59 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

54) क्षायिक सम्यक्त्व–यहाँ चौथे से लेकर चौदहवें तक ग्यारह् गुणस्थान होते हैं। इसमें जातिचतुष्क, स्थावरचतुष्क, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, आतप, सम्यक्त्व, मिश्र, मिथ्यात्व इन 16 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 101, आहारकद्विक और जिननाम इन तीन प्रकृतियों के बिना अविरत गुणस्थान में 98, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियाष्टक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचत्रिक, दुर्भग, अनादेय, अयश और उद्योत-इन 20 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 77 प्रकृतियाँ होती हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क व नीच गोत्र को कम करके आहारकद्विक के मिलाने पर प्रमत्त गुणस्थान में 75 प्रकृतियाँ होती हैं। स्त्यानर्द्धित्रिक, आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के बिना अप्रमत्त गुणस्थान में 70, अपूर्वकरण में अन्तिम दो संहनन कम करने से 72 तथा आगे गुणस्थानों में उदयस्वामित्व के समान समझना चाहिए।

55) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व–इसमें चौथे से लेकर सातवें तक चार गुणस्थानक होते हैं। मिथ्यात्व, मिश्र, जिननाम, जातिचतुष्क, स्थावरचतुष्क, आतप और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन सोलह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 106, आहारकद्विक के बिना अविरत गुणस्थानक में 104, देशविरत गुणस्थानक में 87, प्रमत्त में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए।

56) मिश्र सम्यक्त्व–इसमें एक तीसरा मिश्र गुणस्थानक होता है और उसमें 100 प्रकृतियों का उदय होता है ।

57) सास्वादन–यहाँ सिर्फ दूसरा सास्वादन गुणस्थानक होता है और उसमें 111 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

58) मिथ्यात्व–इसमें प्रथम गुणस्थानक होता है और उसमें आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र इन पाँच प्रकृतियों के बिना 117 प्रकृतियों का उदय होता है ।

59) संज्ञी–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं । द्रव्यमन के सम्बन्ध से केवलज्ञानी को संज्ञी कहा है, अतःयहाँ चौदह गुणस्थानक होते हैं । परन्तु यदि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशमजन्य मनन-परिणामरूप भावमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहें तो इस मार्गणा में बारह गुणस्थानक होते हैं । इसमें स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और जातिचतुष्क-इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । यदि भावमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहें तो संज्ञी मार्गणा में जिननाम का उदय न होने से उसे कम करने पर 113 प्रकृतियाँ होती हैं । आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 109, अपर्याप्त नाम, मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 106 प्रकृतियाँ होती हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन सात प्रकृतियों के सिवाय और मिश्रमोहनीय के मिलने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ होती हैं और अविरत आदि आगे के गुणस्थानों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

60) असंज्ञी–इसमें आदि के दो गुणस्थानक होते हैं । वैक्रियाष्टक, जिननाम, आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्रमोहनीय, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन सोलह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 106 प्रकृतियाँ होती हैं । उसमें से सूक्ष्मत्रिक, आतप, उद्योत, मनुष्यत्रिक, मिथ्यात्व, पराघात, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ विहायोगति और अशुभ विहायोगति-इन पन्द्रह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 91 प्रकृतियाँ होती हैं । सप्तति में उदयस्थानक में असंज्ञी को छह संहनन और छह संस्थान के भांगे दिये हैं, इसलिए उसे छह संहनन और छह संस्थान तथा सुभग, आदेय और शुभ

विहायोगति का भी उदय होता है ।

61) आहारक–इसमें तेरह गुणस्थानक होते हैं । आनुपूर्वीचतुष्क के बिना सामान्य से 118, आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 113, सूक्ष्मत्रिक, आतप और मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन में 108, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर नाम और जातिचतुष्क इन नौ प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100, उनमें से मिश्र मोहनीय को निकालकर बदले में सम्यक्त्वमोहनीय को जोड़ने से अविरत गुणस्थानक में 100, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन तेरह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 87 प्रकृतियाँ होती हैं । आगे के गुणस्थानों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

62) अनाहारक–इस मार्गणा में 1, 2, 4, 13 और 14-ये पाँच गुणस्थानक होते हैं । औदारिकद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, संहननषट्क, संस्थानषट्क, विहायोगतिद्विक, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रत्येक, साधारण, सुस्वर, दुःस्वर, मिश्रमोहनीय और निद्रापंचक-इन 35 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 87, जिननाम और सम्यक्त्वमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 85, सूक्ष्म, अपर्याप्त, मिथ्यात्व और नरकत्रिक इन छह प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन में 79 प्रकृतियाँ होती हैं ।

मिश्र गुणस्थानक में कोई अनाहारक नहीं होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर और जातिचतुष्क-इन नौ प्रकृतियों के बिना और सम्यक्त्वमोहनीय तथा नरकत्रिक इन चार प्रकृतियों को मिलाने पर अविरत गुणस्थानक में 73 प्रकृतियाँ होती हैं । वर्णचतुष्क, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, जिननाम, त्रसत्रिक, सुभग, आदेय, यश, मनुष्यायु, वेदनीयद्विक और उच्चगोत्र-ये पच्चीस प्रकृतियाँ तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानक में केवलिसमुद्घात करने पर तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में उदय होती हैं । त्रसत्रिक, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, जिननाम, साता अथवा असाता में से कोई एक वेदनीय, सुभग,

आदेय, यश और पंचेन्द्रिय जाति-ये बारह प्रकृतियाँ चौदहवें गुणस्थानक में उदय होती हैं। यहाँ सर्वत्र उदय में उत्तरवैक्रिय की विवक्षा नहीं की है। सिद्धान्त में पृथ्वी, अप् और वनस्पति को सास्वादन गुणस्थानक नहीं बताया है, सास्वादन गुणस्थानक वाले को मतिश्रुतज्ञानी कहा है। विभंगज्ञानी को अवधिदर्शन कहा है और वैक्रियमिश्र तथा आहारकमिश्र में औदारिकमिश्र कहा है, परन्तु वह कर्मग्रन्थ में विवक्षित नहीं है।

उदीरणास्वामित्व

उदय-समय से लेकर एक आवलिका तक के काल को उदयावलिका कहते हैं। उदयावलिका में प्रविष्ट कर्मपुद्गल को कोई भी करण लागू नहीं पड़ता है। उदयावलिका के बाहर रहे हुए कर्मपुद्गल को उदयावलिका के कर्मपुद्गल के साथ मिलाकर भोगने को उदीरणा कहते है। जिस जाति के कर्मों का उदय हो, उसी जाति के कर्मों की उदीरणा होती है। इसलिए सामान्य रीति से जिस मार्गणा में जिस गुणस्थानक में जितनी कर्मप्रकृतियों का उदय होता है, उस मार्गणा में उस गुणस्थानक में उतनी प्रकृतियों की उदीरणा भी होती है, परन्तु इतना विशेष है कि जिस प्रकृति को भोगते हुए उसकी सत्ता में मात्र एक आवलिका काल में भोगने योग्य कर्मपुद्गल शेष रहें, तब उसकी उदीरणा नहीं होती है, अर्थात् उदयावलिका में प्रविष्ट कर्म उदीरणायोग्य नहीं रहता तथा शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद जब तक इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक पाँच निद्राओं की उदीरणा नहीं होती, उदय रहता है। छठे गुणस्थानक से आगे मनुष्यायु, साता और असाता वेदनीय कर्म की तद्योग्य अध्यवसाय के अभाव में उदीरणा नहीं होती है, उदय ही होता है तथा चौदहवें गुणस्थानक में योग के अभाव में किसी भी प्रकृति की उदीरणा नहीं होती है, सिर्फ उदय ही होता है।

सत्तास्वामित्व

उदय-उदीरणा-स्वामित्व के अनन्तर 62 उत्तर-मार्गणाओं में प्रकृतियों की सत्ता का कथन करते हैं। सत्ताधिकार में 148 प्रकृतियाँ विवक्षित हैं।

नरकगति और देवगति–इन दोनों मार्गणाओं में एक दूसरे के देवायु और नरकायु के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है। क्योंकि नरकगति में

देवायु की और देवगति में नरकायु की सत्ता नहीं होती है। मिथ्यात्व गुणस्थानक में देवगति में जिननाम की सत्ता नहीं होती है, परन्तु नरकगति में होती है, इसलिए देवगति में मिथ्यात्व गुणस्थानक में 146 और नरकगति में 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है। अविरत गुणस्थानक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय और दो आयु-इन नौ प्रकृतियों के बिना 139 प्रकृतियों की सत्ता होती है। औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के एक आयु के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है। क्योंकि नारकों के देवायु और देवों के नरकायु सत्ता में नहीं होती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के तिर्यंचायु भी सत्ता में नहीं होती है।

मनुष्यगति–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 प्रकृतियों की सत्ता होती है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि (अचरमशरीरी) चारित्रमोह के उपशमक को तिर्यंचायु, नरकायु, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और दर्शनमोहनीयत्रिक-इन नौ प्रकृतियों के बिना 139 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं और चरमशरीरी चारित्रमोह के उपशमक उपशमसम्यग्दृष्टि को अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने के बाद तीन आयु के सिवाय 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि भविष्य में क्षपकश्रेणी का प्रारम्भ करने वाले चरमशरीरी को नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय 145 की सत्ता होती है और अनन्तानुबन्धीचतुष्क तथा दर्शनमोहनीयत्रिक इन सात प्रकृतियों का क्षय करने के बाद 138 प्रकृतियों की सत्ता होती है। भविष्य में उपशम श्रेणी के प्रारम्भक उपशमसम्यग्दृष्टि (अचरम शरीरी) को नरक और तिर्यंच आयु के सिवाय 146 प्रकृतियों की और अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना करने के बाद 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है।

देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्त-इन तीन गुणस्थानों में उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी का आश्रय लेने वाले के चौथे गुणस्थानक जैसी सत्ता होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थानक में चारित्रमोह के उपशमक उपशमसम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यंचायु और नरकायु-इन छह प्रकृतियों के बिना

142 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । चारित्रमोह के उपशमक क्षायिक सम्यग्दृष्टि के दर्शनसप्तक, नरकायु और तिर्यंचायु के बिना 139 प्रकृतियों की सत्ता होती है और क्षपक श्रेणी के पूर्व में कहे गये अनुसार सत्ता होती है ।

अनिवृत्त्यादि गुणस्थानक में दूसरे कर्मग्रन्थ में कहे गये सत्ताधिकार के समान यहाँ भी समझ लेना चाहिए ।

तिर्यंचगति–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व, सास्वादन और मिश्र गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । अविरत गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि को दर्शनसप्तक, नरकायु और मनुष्यायु के सिवाय 138 और उपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

देशविरत गुणस्थानक में औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच असंख्यात वर्ष के आयुष्य वाला होता है और उसको देशविरत गुणस्थानक नहीं होता है ।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय–इन चार मार्गणाओं (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति) में सामान्य से और मिथ्यात्व, सास्वादन गुणस्थानक में जिननाम, देवायु और नरकायु के सिवाय 145 प्रकृतियों की सत्ता होती है । परन्तु सास्वादन गुणस्थानक में आयु का बन्ध नहीं होने की अपेक्षा से मनुष्यायु के सिवाय 144 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

पंचेन्द्रिय–इस मार्गणा में मनुष्यगति के अनुसार सत्ता समझना चाहिए ।

पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय–इन तीन मार्गणाओं में एकेन्द्रिय मार्गणा के समान सत्ता समझना चाहिए ।

तेजस्काय और वायुकाय–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में जिननाम, देव, मनुष्य और नरकायु-इन चार प्रकृतियों के बिना 144 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

त्रसकाय–यहाँ मनुष्यगति प्रमाण सत्ता समझना चाहिए ।

मनोयोग, वचनयोग और काययोग–इन तीन मार्गणाओं में मनुष्यगति मार्गणा की तरह तेरह गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

तीन वेद, क्रोध, मान, माया–इनमें मनुष्यगतिमार्गणा की तरह नौ

गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

लोभ–यहाँ मनुष्यगति के समान दस गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान–इन तीन मार्गणाओं में मनुष्यगति मार्गणा के समान चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

मनःपर्यवज्ञान–यहाँ सामान्य से तिर्यंचायु और नरकायु के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है और छठे गुणस्थानक से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगतिमार्गणा के समान सत्तास्वामित्व जानना चाहिए ।

केवलज्ञान–यहाँ मनुष्यगति के समान अन्तिम दो गुणस्थानों में कहा गया सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगज्ञान–इनमें सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 और दूसरे, तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

सामायिक और छेदोपस्थानीय–इन दो मार्गणाओं में सामान्य से 148 प्रकृतियों की सत्ता होती है और इनमें छठे गुणस्थानक से लेकर नौवें गुणस्थानक तक मनःपर्यवज्ञानमार्गणा के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

परिहारविशुद्धि–इसमें छठे और सातवें गुणस्थानक में कहे गये अनुसार सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

सूक्ष्मसंपराय–इसमें सामान्य से तिर्यंचायु और नरकायु के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है अथवा अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना करनेवाले को अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यंचायु और नरकायु इन छह प्रकृतियों के सिवाय 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

यथाख्यात–यहाँ ग्यारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व मनुष्यगतिमार्गणा के समान समझना चाहिए ।

देशविरत–यहाँ सामान्य से 148 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । इसमें एक पाँचवाँ गुणस्थानक ही होता है और उसमें मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
द्वारा आलेखित 222 पुस्तकों में से प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
अध्यात्मयोगी पूं.पं.श्री पंन्यासजी म. का साहित्य		
1.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
2.	अजातशत्रु अणगार	100/-
3.	महान् योगी पुरुष	85/-
4.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
5.	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
6.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
7.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
8.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
9.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
10.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	80/-
11.	हार्दिक–श्रद्धांजलि	190/-
जैन धर्म का पाठ्यक्रम		
1.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
2.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-
6.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-
7.	जीव विचार विवेचन	60/-
8.	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
9.	दंडक सूत्र	50/-
10.	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
11.	तीन भाष्य (चैत्यवंदन भाष्य, गुरुवंदन व पच्चक्खाण)	150/-
12.	कर्मग्रंथ-पहला	100/-
13.	कर्मग्रंथ-दूसरा-तीसरा	70/-
14.	चौथा-कर्मग्रंथ	55/-
15.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	100/-
16.	छठा-कर्मग्रन्थ	160/-
17.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
18.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	220/-
19.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
20.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
21.	Panch Pratikraman Sootra	60/-
22.	विवेकी बनो	90/-
वैराग्य पोषक ग्रंथ		
23.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
24.	वैराग्य शतक	100/-
25.	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
जीवन-उपयोगी साहित्य		
27.	जैन-महाभारत	130/-
28.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-
29.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
30.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
31.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
32.	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
33.	सज्झायों का स्वाध्याय	35/-
34.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
35.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
36.	विविध-तपमाला	100/-
37.	Pearls of Preaching	60/-
38.	अमृत रस का प्याला	300/-
39.	संस्मरण	50/-
40.	Celibacy	70/-
41.	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
42.	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
43.	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
44.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-
45.	श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
46.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-
47.	शंका-समाधान (भाग-4)	60/-
48.	व्यसन-मुक्ति	100/-
49.	गणधर-संवाद	80/-
50.	समाधि मृत्यु	80/-
51.	New Message for a New Day	600/-
52.	आओ श्रावक बनें !	25/-
53.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-
54.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
55.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार-1	160/-
56.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार-2	160/-
57.	सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-
58.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-
59.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-
60.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-